मासिक समाचार पत्र

लोकविद्या पंचायत

● सूचना युग में बराबरी के विचार के पुनर्निर्माण का पत्र ●
● लोकविद्याधर समाज के पुनर्संगठन का वैचारिक आधार पत्र ●
● पूँजी आधारित समाज के स्थान पर ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का विचार पत्र ●

वर्ष 1 , अंक 2 , कुल पृष्ठ : 8 | 5 जून 2011 | सहयोग राशि : 5 रुपये

महात्मा चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत अमर रहें

चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत पिछले 25 साल इस देश के किसानों के निर्विवाद नेता रहे। अलौकिक प्रतिभा और समझ का स्वामी, किसानों का हमदर्द, यह किसान का बेटा रविवार 15 मई की सुबह हम सबसे विदा हो गया। 1987 की गर्मियों में शामली से किसानों के इकट्ठा होने की जो शुरुआत हुई वह मेरठ, दिल्ली, भोपा और लखनऊ से होते हुए एक ऐसी यात्रा बन गई जिससे उत्तर प्रदेश का हर प्रशासन खौफ खाने लगा। अगर लाखों-लाख किसान बार-बार जिन्दगी की बुनियादी आवश्यकताओं के सवाल पर शांतिपूर्ण ढंग से इकट्ठा होने लग जायें तो किसी भी शासन के होश उड़ जायेंगे। इस सबके बावजूद अपने होश न खोना यह एक महात्मा की ही पहचान हो सकती है। चौ॰ महेन्द्र सिंह टिकैत एक ऐसे ही महात्मा थे।

दिसम्बर, 1980 में हैदराबाद में विभिन्न राज्यों के किसान संगठनों के नेताओं ने सर्व-सहमति से भारतीय किसान यूनियन के नाम से किसानों का एक अराजनैतिक संगठन बनाये जाने का ऐतिहासिक फैसला लिया। उत्तर भारत में 1987 में चौ॰ महेन्द्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में इसी भा॰कि॰यू॰ के तहत एक किसान-तूफान ने आकार लिया। यह तूफान अद्‌भुत शक्ति और गरिमा के साथ उठा। लाखोंलाख किसान महात्मा की आवाज पर इकट्ठा होने लगे। अत्यन्त शांतिपूर्ण तरीके, विवेकपूर्ण तर्क और लोकपरक संगठन व संघर्ष की पद्धतियों के चलते चौ॰ महेन्द्र सिंह टिकैत के नेतृत्व की अद्‌भुत क्षमता ने सभी को चमत्कृत कर दिया। उन्होंने गांधीजी की परम्परा को प्रभावी ढंग से पुनर्स्थापित किया। उन्हें भी महात्मा कहा जाने लगा।

नेतृत्व का चरित्र, संख्या, शांतिपूर्ण तरीके और अराजनीतिकता का विचार ये इस किसान आंदोलन के प्रमुख गुण रहे हैं जिसे चौ॰ महेन्द्र सिंह टिकैत ने एक-एक ईंट जोड़कर बनाया। वे ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन अपने दर्शन और नेतृत्व क्षमता के बल पर उन्होंने एक नई मिसाल कायम की। भारतीय किसान यूनियन के किसी कार्यक्रम में कभी कोई ठाट-बाट नहीं रहता। किसान अपने हक के लिये संघर्ष करता है और प्रशासनिक अफसरों, मंत्रियों वगैरह को अपने सत्याग्रह के स्थल पर आकर सब किसानों के सामने वार्ता के

लिये मजबूर करता है। गाँव के मामले में अदालत न जाकर आपसी पंचायत के बल पर हल ढूँढ़ने पर जोर होता है।

इस आंदोलन ने किसानों में एक अद्‌भुत आत्मविश्वास का संचार किया। सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों की वास्तविकता क्या होनी चाहिये यह किसान समझने लगा। अब वह उन्हें सेवक के रूप में देखता, उनसे डरने या दबने का सवाल तो कोसों पीछे छूट गया। यह बार-बार देखा गया कि आंदोलन सभी को एक नजर से देखता रहा। विश्वविद्यालय के किसी प्रोफेसर की तुलना में एक सामान्य कम पढ़े-लिखे या अनपढ़ किसान के विचार को कम महत्त्व दिया जाय ऐसा कभी नहीं हुआ। हर वर्ष जनवरी में प्रयाग में गंगाजी के किनारे की बालू पर और जून में हरिद्वार में किसानों की दो महापंचायतें होती हैं जिनमें भा॰कि॰यू॰ में आपसी चर्चा के मार्फत संगठन के मूल्यों की नियमित प्रतिस्थापना होती रहती है।

आशा है कि चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत द्वारा स्थापित समझ और मूल्यों का निर्वहन किसान आंदोलन करता रहेगा तथा अराजनैतिक सत्ता के नये-नये रूप विकसित करता रहेगा।

●

फिर से किसानों पर गोलीबारी

दिल्ली के पास उत्तर प्रदेश के जिले नोएडा में जमीन अधिग्रहण के विरोध में संघर्षरत किसानों पर पुलिस दमन का नतीजा दो किसानों की मौत में हुआ। पुलिस प्रशासन ने इतने आक्रामक तेवर बनाये कि किसान भी उखड़ गये और किसान घरों के नौजवानों ने मैदान में पुलिस के खिलाफ मोर्चा संभाल लिया। इस संघर्ष में दो पुलिस वाले भी मारे गये। किसानों की ये जमीनें दिल्ली-आगरा यमुना एक्सप्रेस-वे के लिये छीनी जा रही हैं। पिछले साल अलीगढ़ जिले में टप्पल में इसी राजमार्ग के लिये जमीनें अधिग्रहित करते समय किसानों ने बड़ा विरोध संगठित किया था और उसमें भी किसान मारे गये थे। यमुना एक्सप्रेस-वे ऐशो आराम की कल्पना है। इस राजमार्ग के ईर्द-गिर्द आधुनिक रिहायशी नगर, बड़े-बड़े बाजार और रीसार्ट बनेंगे। पैसे वालों की विलासी दुनिया बसाई जायेगी, पर्यटन और उच्छृंखल संस्कृति को बढ़ावा दिया जायेगा। राजमार्ग के लिये जमीन तो बस कहने की बात है वास्तव में किसानों की जिन्दगी उजाड़कर पूँजीपति और व्यवसायियों की दुनिया बसाई जा रही है। इलाहाबाद हाईकोर्ट का 12 मई का फैसला इस बात की पूरी पुष्टि करता है। अदालत ने नोएडा के शाहदरी गाँव की 157 हेक्टेयर जमीन उनके वास्तविक मालिकों को वापस करने का निर्देश दिया है। सरकार ने जनोपयोग और औद्योगिक विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण की तत्काल आवश्यकता बताई थी जबकि ग्रेटर नोएडा विकास प्राधिकरण ने इसे आवासीय बहुमंजिला भवन बनाने के लिये बिल्डर्स को देने का तय किया था। भूमि का अधिग्रहण 850 रुपये प्रतिवर्गमीटर की दर से किया गया और इसे बिल्डर्स को 10,000/- रुपये प्रतिवर्गमीटर की दर से दिया जाना था। किसानों की कीमत पर सभी की चाँदी थी। लगातार उजागर हो रहे अरबों के भ्रष्टाचार के मामलों ने एक बात तो साफ कर ही दी है कि राजनेताओं और प्रशासन ने सरकारी खजाने से पैसा चुराने का जबर्दस्त तंत्र विकसित कर लिया है।

इस विलासी नई दुनिया का नशा बढ़ता ही चला जा रहा है। किसानों पर गोली चलाने में कोई सरकार नहीं हिचक रही है। पिछले कुछ महीनों में ही आन्ध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम जिले में सोमपेटा और कांकर पल्ली में किसान पुलिस की गोली से मारे गये। महाराष्ट्र में रत्नागिरी जिले के जैतापुर में एक किसान पुलिस की गोली से मारा गया। टप्पल का जिक्र हमने ऊपर किया ही है। अब यही भट्ठा परसौल में हुआ है। सभी जगह मामला जमीन अधिग्रहण का है। लगता नहीं है कि किसानों की यह शहादत खाली जायेगी। सभी जगह जहाँ-जहाँ किसानों की जमीनें अधिग्रहण कानून का दुरूपयोग करके छीनी जा रही है, किसान संघर्षरत है और उनमें इन सब जुल्म की घटनायें नया जोश भर रही हैं। संघर्ष यह पैमाना अख्तियार कर चुका है कि किसानों की कब्रों पर नई इमारतें बनेंगी या किसान अपने संघर्षों से एक अपनी नई दुनिया का आगाज़ करेंगे।

●

वाराणसी में चौधरी की कीर्ति-सभा

22 मई 2011 की दोपहर पूर्वांचल के भारतीय किसान यूनियन के कार्यकर्ता वाराणसी में गंगा और वरुणा के संगम पर चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत की श्रद्धांजलि एवं कीर्ति-सभा में एकत्रित हुए। मौका था उनकी अस्थियों का गंगाजी में विसर्जन। वाराणसी, भदोही, जौनपुर, चन्दौली, गाजीपुर, बलिया, मऊ और आजमगढ़ से संख्या में आए भारतीय किसान यूनियन के कार्यकर्ताओं ने इस कीर्ति-सभा को एक संकल्प-सभा में परिणत कर दिया। सभी ने कहा कि हम सब संगठन और संघर्ष में विश्वास करने वाले लोग हैं। महात्माजी को सच्ची श्रद्धांजलि तभी दे सकते हैं जब उनके बताये रास्ते पर चलते हुए उनके द्वारा उठाये तथापि अधूरे छूटे कार्यों को पूरा करने में जुट जाएं। वाराणसी के मण्डल अध्यक्ष जगदीश सिंह यादव ने वर्तमान प्रश्नों में भूमि अधिग्रहण और बिजली के सवाल को विशेषरूप से रेखांकित किया और कहा कि पूर्वांचल का किसान इन दोनों ही मसलों में अपने हक हासिल करें, इसके लिए भारतीय किसान यूनियन पूरी तौर पर जुटेगा। विद्या आश्रम की ओर से डॉ. चित्रा सहस्रबुद्धे ने यह कहा कि महात्माजी ने एक ऐसे किसान मार्ग का उद्‌घाटन किया है, जो सत्य का मार्ग है। सभा की अध्यक्षता इस क्षेत्र के भारतीय किसान यूनियन के सबसे वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री बाबूलाल मानव ने की तथा संचालन वाराणसी के जिलाध्यक्ष लक्ष्मण प्रसाद मौर्य ने किया।

●

किसान आन्दोलन की संघर्ष यात्रा

भारतीय किसान यूनियन के नाम से किसानों के अराजनैतिक संगठन बनाये जायें, यह फैसला 15 दिसम्बर 1980 को हैदराबाद में विभिन्न राज्यों के किसान संगठनों के नेताओं की उपस्थिति में तमिलनाडु के महान किसान नेता नारायण स्वामी नायडू के नेतृत्व में लिया गया। पंजाब के खेती-बाड़ी यूनियन ने अपना नाम बदलकर भारतीय किसान यूनियन (भा॰कि॰यू॰) रख लिया। आज तक वे इस नाम के संगठन को अराजनैतिक बनाकर रखने में सफल हैं। तमिलनाडु का किसान संगठन विवसाइगल संगम, महाराष्ट्र का शेतकरी संघटना और कर्नाटक का रैयत संघ के नाम से जाना गया।

1980 ही वह चमत्कारिक वर्ष था जब महाराष्ट्र की शेतकरी संघटना ने नासिक में 'रेल रोको, रास्ता रोको' के मार्फत तथा किसानों की शहादत के बल पर गन्ने का दाम 13 रुपये प्रति क्विंटल से बढ़वाकर 25 रुपये प्रति क्विंटल मनवा लिया। उसी वर्ष कर्नाटक रैयत संघ ने अपने आन्दोलन के जरिये 30 रुपये प्रति क्विंटल का दाम हासिल किया। तमिलनाडु और पंजाब में पहले से बहुत बड़े-बड़े और सक्षम किसान संगठन कार्यरत थे। तमिलनाडु के किसान एक समय 10,000 बैलगाड़ियों से कोयम्बतूर शहर जाम कर चुके थे। बाद में पंजाब के किसानों ने एक ऐतिहासिक धरने में राजभवन को 3 दिन तक घेरे रखा था। 1980 से लेकर 1986 तक पूरे देश में एक किसान तूफान चल रहा था। कृषि उत्पादन के दाम, बिजली और कर्ज के सवाल पर तमिलनाडु से लेकर पंजाब तक लाखों-लाख किसानों का इकट्ठा होना और शान्तिपूर्ण तरीकों से डटे रहकर अपनी माँगें मनवाना एक अद्‌भुत नजारा बन गया था। यह आँधी धीमी पड़ रही थी तभी उत्तर प्रदेश का किसान जाग उठा और 1987 की गर्मियों में चौ॰ महेन्द्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में फिर से एक किसान तूफान ने आकार लेना शुरू किया। भा॰कि॰यू॰ की 1980 की स्थापना के बुनियादी मूल्य को शिरोधार्य करते हुए एक ऐसे अराजनीतिक किसान संगठन का जन्म हुआ जो हरिद्वार से बलिया तक एक-एक तहसील तक पहुँच गया।

लोकविद्या पंचायत का समूह शुरू से, 1978 से, किसान आंदोलन में भागीदार रहा है। हम तब 'मजदूर किसान नीति' नाम की एक पत्रिका निकालते थे, जिसका काम हुआ करता था किसान आंदोलन के बीच समन्वय बनाना और इस किसान आन्दोलन का विचार पढ़ने-लिखने वालों के बीच तक ले जाना। चौ॰ महेन्द्र सिंह टिकैत के विचारों का हमें भी भरपूर लाभ हुआ। अराजनीतिक सत्ता के विचार को तराशते-तराशते हम लोकविद्या विचार से समृद्ध हुए। अब आशा है कि यह लोकविद्या विचार भारतीय किसान यूनियन में और बृहत् किसान समाज में चौ॰ महेन्द्र सिंह टिकैत की वैचारिक और सांगठनिक परम्परा बनाये रखने का आधार देगा।

– सुनील सहस्रबुद्धे

●

लोकविद्या जन-आंदोलन

लोकविद्या जन-आंदोलन का पहला अधिवेशन वाराणसी में 12-14 नवंबर 2011 को होगा। इसकी पहली तैयारी बैठक वाराणसी में 20-21 नवंबर 2010 को हुई। इस बैठक में पारित वैचारिक प्रस्ताव को लोकविद्या पंचायत के फरवरी 2011 के अंक में प्रकाशित किया गया है। दूसरी तैयारी बैठक हैदराबाद में 27-28 फरवरी 2011 को हुई। इसकी रपट लोकविद्या पंचायत के मई 2011 के अंक में प्रकाशित है। तीसरी तैयारी बैठक इन्दौर में 1-3 जून के बीच होगी। लोकविद्या पंचायत के अगले अंक में इस अधिवेशन का घोषणा/निमंत्रण का प्रपत्र प्रकाशित किया जायेगा। यह घोषणा प्रपत्र हिन्दी, बंगाली, मराठी, तेलुगू, कन्नड़, अंग्रेजी, स्पेनिश, फ्रेंच और इटालियन भाषाओं में तैयार किया जा रहा है। इनके संदर्भ हमसे अथवा विद्या आश्रम की वेबसाइट से प्राप्त किये जा सकते हैं। अधिवेशन में विस्तृत राष्ट्रीय भागीदारी के अलावा अंतर्राष्ट्रीय भागीदारी के प्रयास किया जा रहे हैं।

लोकविद्या पंचायत के अंकों में लोकविद्या जन-आंदोलन एवं आगामी अधिवेशन से सम्बन्धित विषयों पर तथा संगठनात्मक चर्चाएं जारी रहेंगी। पिछले अंक भूमि अधिग्रहण और विस्थापन को विशेष स्थान दे चुके हैं। इस अंक में स्थानीय बाजार पर चर्चा है। आगामी अंकों में राष्ट्रीय संसाधनों का बराबर का बंटवारा (बिजली, शिक्षा, वित्त समेत), जीवनावश्यक सामानों व सेवाओं का ज्ञान व आर्थिकी, लोकविद्या जीवनयापन अधिकार कानून, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय जन ज्ञान आंदोलन, ज्ञान पत्रकारिता जैसे विषय लिए जायेंगे।

●

वैश्विक पूँजी और स्थानीय बाजार

अमित बसोले

हिन्दुस्तान का फुटकर धंधा ज्यादातर छोटे-छोटे फुटकर धंधे के रूप में अस्तित्व रखता है। स्थानीय परचून की दुकानें और पटरी पर के ठेले-गुमटी-खोमचे आदि कुल फुटकर धंधे के 95 फीसदी हिस्सा हैं। भारत सरकार के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार 1.8 करोड़ लोग कपड़े और खाद्य पदार्थों में फुटकर धंधे को अपना मूल धंधा बताते हैं। वास्तविक संख्या शायद इससे अधिक ही है। इसकी तुलना में सुपर बाजार, माल और कम्पनियों की बड़ी-बड़ी दुकानों में करीब 5 लाख लोगों को रोजगार मिलता है। हांलाकि फुटकर धंधे में स्थानीय दुकानों की ही भरमार है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि स्थानीय अर्थव्यवस्था में कोई मजबूती हो। वैश्वीकरण के दौर में यह और कमजोर ही होती चली गई है। वैश्वीकरण की खिलाफत के किसी भी मोर्चे में स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करना शामिल होना चाहिये। हम लोग इस लेख में यह समझने की कोशिश करेंगे कि किस तरह स्थानीय बाजार को कमजोर किया जाता है और वित्त की इस प्रक्रिया में क्या भूमिका है।

स्थानीय बाजार या स्थानीय अर्थव्यवस्था की चर्चा में नियंत्रण और मालिकाने का बहुत महत्व है। जो सवाल महत्वपूर्ण हैं वे हैं इस अर्थव्यवस्था में संसाधनों पर नियंत्रण किसका है, उनका मालिक कौन है? यानि जमीन और दुकानदारों का मालिक कौन है ? इन दुकानों में बिकने वाला सामान कौन बनाता है? इन सवालों के दो पहलू हैं: फुटकर विक्री और उत्पादन। ये दोनों ही स्थानीय हो सकते हैं और बाहरी भी। नीचे की तालिका देखें—

	स्थानीय उत्पादन	बाहरी उत्पादन
स्थानीय बिक्री	**बाक्स 1** कपड़ा, खाना इत्यादि, जिसका स्थानीय उत्पादन होता है और वहीं के दुकानदारों द्वारा वहीं के बाजारों में बिकता है।	**बाक्स 2** राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ठप्पे जैसे कोलगेट, टाटा आदि का सामान जो स्थानीय दुकानदारों द्वारा बेचा जाता है।
बाहरी बिक्री	**बाक्स 4** कारीगरी और हस्तशिल्प के सामान जो मॉलों में और बड़ी कम्पनियों की दुकानों में बिकते हैं।	**बाक्स 3** राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय ठप्पे का सामान, जो मॉलों में और बड़ी कम्पनियों की दुकानों में बिकते हैं।

स्थानीय विक्री के लिये स्थानीय उत्पादन यह गांधी के स्वदेशी का अर्थ था (बाक्स 1)। वैश्वीकरण ने दोनों को ही कमजोर किया है। वैश्वीकरण से यह पक्का हुआ है कि पूँजी और सामान दोनों ही बिना किसी बंधन के मुक्त रूप में दूर दराज के इलाकों तक जाये और इन इलाकों से ब्याज, किराया और मुनाफे के रूप में सम्पदा का स्थानान्तरण हो। पहले स्थानीय उत्पादन को तोड़ा जाता है। राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय कम्पनियों के ठप्पेदार सामान स्थानीय उत्पादन का स्थान लेना शुरू कर देते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि स्थानीय बाजारों में कोलगेट, टाटा, रिलायंस आदि के सामान बिक रहे हैं (बाक्स 2)। खाना, कपड़ा, साबुन, बर्तन जैसा ज्यादातर बाहर से आने वाला सामान स्थानीय उत्पादन का बाजार तोड़ता है। मोबाइल फोन जैसे कुछ सामान बड़े कारखानों में ही बनते हैं इसलिये इनकी प्रतिस्पर्धा किसी स्थानीय सामान से नहीं दिखाई देती। हांलाकि इन पर होने वाला खर्च स्थानीय सामानों की बिक्री पर असर डालता ही है।

जैसे जैसे स्थानीय उत्पादन पर विपरीत असर आता है, स्थानीय कारीगरों का रोजगार छिनता जाता है। स्त्रियों पर विशेष असर आता है क्योंकि ये हमेशा से खाद्य और वस्त्र उद्योग में रही हैं। उनके हुनर और उत्पादन क्षमताओं का कोई मूल्य ही नहीं रह जाता। इसके बाद वैश्विक पूँजी फुटकर धंधे पर ही हमला बोल देती है। छोटी दुकानों के स्थान पर बड़ी-बड़ी दुकानें, दुकानों की कड़ियाँ और माल दिखायी देने लगते हैं। ये सब दुनिया भर में बनने वाले ठप्पेदार सामान बेचते हैं (बाक्स 3)। कुछ माल ऐसे भी होते हैं जहाँ स्थानीय कारीगरी और हस्तशिल्प के सामान भी बिकते हैं। यह सांकेतिक होता है और उन सब कारीगरों के मुँह पर एक तमाचे जैसा होता है जिनकी आजीविका उसी माल द्वारा खत्म की गई होती है (बाक्स 4)। यह आज का तथाकथित 'विकास' है क्योंकि हमें यह बताया जाता है कि यूरोप और अमेरिका में ऐसा ही होता है, खरीददार बड़े-बड़े ए0सी0 दुकानों और माल में जाकर चीन, भारत और दुनिया भर में बने हुये सामानों को खरीदते हैं।

वैश्विक वित्त

व्यापार और उत्पादन का वैश्वीकरण सबको दिखाई देता है किंतु इसके पीछे एक वित्त के केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया है। एक तरफ वैश्विक बाजार दुनिया के हर कोने में ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंच गया है और दूसरी तरफ बड़े पैसे पर नियंत्रण करने वाले लोगों की संख्या घटती चली गई है। इस तरह से पूँजी इस अर्थ में तो वैश्विक हो गई कि राष्ट्रों की सरहद अब इस पर कोई बंधन नहीं डाल पाती लेकिन वितरण के दृष्टिकोण से पूँजी एकदम ही वैश्विक नहीं है क्योंकि दुनिया भर के देशों और मानवीय आबादी में इसका वितरण एकदम ही असमान है। अब वैश्विक आबादी के केवल 1 फीसदी लोग विश्व की कुल सम्पदा का 40 फीसदी से भी अधिक को नियंत्रित करते हैं। अमेरिका, जिसे एक बड़े घनी देश के रूप में देखा जाता है वास्तव में बड़ी गैर-बराबरी का देश है। अमेरिका के मात्र 1 फीसदी धनी लोग 34 फीसदी राष्ट्रीय सम्पदा के मालिक हैं।

इस तरह बाजारों का फैलाव और वित्त का केन्द्रीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वैश्वीकरण से गैर-बराबरी बढ़ती है। इसके कई कारण हैं। पूँजी की मुक्त गति के चलते मजदूरी में गिरावट आती है (क्योंकि मजदूरों की सौदेबाजी की ताकत घट जाती है)। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी आवश्यक सेवाओं और पानी और भोजन जैसी आवश्यक वस्तुओं के निजीकरण से इन सबका दाम बढ़ जाता है। इसके नतीजे स्वरूप दुनिया भर के कामकाजी लोग अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करने के लिये बढ़ता हुआ कर्ज लेने को मजबूर हैं। इस कर्ज का जो ब्याज वो देते हैं उसके चलते उनकी आय का एक हिस्सा अमीरों के पास चला जाता है। यह भारत जैसे गरीब देश में और अमेरिका जैसे धनी देश में, दोनों ही जगह सच है। वैश्वीकरण बाजार के जरिये भी गैर बराबरी बढ़ती है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि वैश्वीकरण के चलते गरीब और सामान्य परिस्थिति के लोग बड़ी-बड़ी कम्पनियों और अमीर लोगों के साथ बाजार में लेन देन करने के लिये मजबूर होते हैं। यह बात राष्ट्रीय स्तर पर भी लागू होती है क्योंकि गरीब देश अमीर देशों के साथ लेन देन के लिये मजबूर होते हैं। जब बाजार में लेन देन करने वाले घटकों की आर्थिक सत्ता में बड़ा अन्तर होता है तो अधिकांश असमान विनिमय ही होता है। यानि कमजोर घटक को सस्ता बेचना और महंगा खरीदना पड़ता है जिससे आय का पुनर्वितरण एक बार फिर धनी लोगों के पक्ष में ही होता है।

स्थानीय मुद्रा के प्रयोग

दुनिया के कई देशों में सरकारी मुद्रा के साथ-साथ स्थानीय मुद्रा भी अस्तित्व रखती है। अमेरिका के इथाका शहर में 900 ऐसे उद्यम हैं जो उस क्षेत्र की स्थानीय मुद्रा लेने को तैयार हैं। ऐसी मुद्रा के बारे में हमेशा यह पाया गया है कि इसके चलन से स्थानीय अर्थव्यवस्था में सुधार होता है, बेरोजगारी घटती है और न्यूनतम मजदूरी बढ़ती है। काफी बार अर्थव्यवस्थाएं कुछ ऐसी जकड़न में फंस जाती हैं कि करने के लिए काम होता है और लोग भी होते हैं,जो यह काम करने के लिए तैयार हों, लेकिन जिनके पास पैसा है, वे उन कामों को कराने के लिए जरूरी पैसा खर्च करने के लिए तैयार नहीं होते। यह पैसे की जमाखोरी है, वे पैसा बैंक में रखकर ब्याज कमाते हैं। चूंकि स्थानीय मुद्रा पर ब्याज मिलना बहुत कठिन होता है इसलिए इसे लोग जमा नहीं करते। इसका मतलब है कि स्थानीय मुद्रा का चलन राष्ट्रीय मुद्रा की तुलना में तेज होता है। यानि उसका उत्पादक इस्तेमाल होता है और केवल पैसे से पैसा बनाने के लिए नहीं। 1932 की महान् मंदी के दौरान यूरोप के आस्ट्रिया देश के वोर्गल शहर ने स्थानीय मुद्रा का एक बहुचर्चित प्रयोग किया था, जिससे उस शहर के लोगों को मंदी के सबसे बड़े प्रभाव बेरोजगारी के असर से काफी बड़े पैमाने पर राहत मिली थी।

ऊपर दिये कारणों के अलावा वैश्वीकरण स्थानीय अर्थव्यवस्था को सीधे नुकसान पहुँचाता है जिसके चलते स्थानीय समुदायों के हाथ से पैसा निकलकर सीधे उनके पास जाता है जो पहले से धनी हैं (इसका एक छोटा सा हिस्सा मजदूरी के रूप में बंट जाता है)। अमेरिका के स्थानीय अर्थव्यवस्था के समर्थकों के गणित के अनुसार जब ग्राहक स्थानीय लोगों की दुकानों से सामान खरीदते हैं तो उनके पैसे का 30-40 फीसदी स्थानीय स्तर पर रुक जाता है और जब वे माल या बड़ी दुकानों (जैसे वालमार्ट) जैसी दुकानों से सामान खरीदते हैं तो उनके खर्च किये हुये पैसे का केवल 15 फीसदी स्थानीय स्तर पर रुकता है। भारत में यह प्रतिशत अमेरिका की तुलना में काफी ज्यादा होना चाहिये क्योंकि अमेरिका में सारा सामान ही बाहर से आता है जबकि भारत में अभी भी स्थानीय बाजारों में स्थानीय उत्पादन मिलता है।

अमेरिका जैसे देश में स्थानीय अर्थव्यवस्था बहुती ही कम है लेकिन यह बात जोर पकड़ती जा रही है कि स्थानीय समुदायों की खुशहाली और स्थानीय अर्थव्यवस्था की मजबूती के बीच गहरा सम्बन्ध है। कई विकसित पूँजीवादी देशों में उत्पादन और वित्त के वैश्वीकरण के साथ साथ 'स्थानीय अर्थव्यवस्था' के पक्ष में भी आन्दोलन विकसित हुआ। अमेरिका में 4000 किसान बाजार है, यानि वे बाजार जहां स्थानीय किसान अपना उत्पादन बेचने के लिये लाते हैं। फुटकर धंधे में बड़ी पूँजी द्वारा पैदा समस्याओं के चलते पश्चिमी यूरोप के देशों में बड़ी बड़ी दुकानों की जगह छोटी दुकानें लोकप्रिय हो रही हैं। स्थानीय बाजार के समर्थकों की दृष्टि में बड़ी दुकानें और माल पर्यावरण विरोधी होते हैं, श्रम विरोधी होते हैं और बेहद भौड़े, असुंदर होते हैं। स्थानीय परचून की दुकान, किताबों की दुकान, और किसान बाजार आदि को भावी प्रवृत्तियों के रूप में देखा जा रहा है। वास्तव में पिछले कुछ वर्षों से 'स्थानीय खरीदो' एक लोकप्रिय नारा बन गया है। यहां तक की वालमार्ट जैसे बड़े निगम भी अपने को झूठे ही स्थानीय बताते हैं। बड़ी दुकानों और कम्पनियों की दुकानों की कड़ियों की विकसित देशों में इतनी आलोचना हुई है कि छोटी और स्थानीय दुकानों में खरीदना फैशन भी बन गया है तथा सामाजिक चेतना का प्रतीक भी माना जाता है। जबकि भारत में पैसे वाले लोग माल की ओर भाग रहे हैं, वैश्विक ठप्पे देखकर सामान खरीद रहे हैं, और कई देशों में उपभोक्ता स्थानीय बाजार के महत्व से परिचित हो रहे हैं। हांलाकि यह उपभोक्ता आन्दोलन अभी तक किसी सचेत राजनीतिक आन्दोलन का रूप नहीं ले सका है।

भारत में स्थानीय दुकानें ही सबसे अधिक हैं और सब जगह हैं। लेकिन इनमें गरीब और स्थानीय लोगों की पक्षधर किसी भावी व्यवस्था का अंश न देखकर उन्हें पहले से चली आ रही एक अव्यवस्थित विरासत के रूप में देखा जाता है। स्थानीय बाजार के प्रति इस विचार का स्रोत भी वही है जो कारीगरी आधारित उद्योग को एक ऐसी विरासत के रूप में देखता है जिसे समयांतर में खत्म होना है। मुख्य कारण यह है कि स्थानीय बाजार और कारीगरी आधारित उद्योग दोनों ही लोकविद्याधर समाज की अपनी गतिविधियाँ हैं। इनमें आमदनी घटती गई है जिसके चलते इस समाज की गतिशीलता बड़े पैमाने पर टूटी है।

स्थानीय वित्त?

वैश्विक वित्त यदि स्थानीय अर्थव्यवस्था को विगाड़ता है, तो स्थानीय वित्त की शक्ल क्या होगी? कुछ स्थानीय समाजों ने अपने बाजारों की स्थानीयता को बरकरार रखने के लिये स्थानीय मुद्रा के प्रयोग किये हैं। स्थानीय मुद्रा स्थानीय बाजार में ताकत भरने का सीधा तरीका है। यह ऐसा पैसा होता है जिसे स्थानीय समुदाय जारी करता है। यह स्थानीय समुदाय कोई नगर, गाँवों का समूह या एक भौगौलिक क्षेत्र हो सकता है। उनके द्वारा जारी स्थानीय मुद्रा केवल उनके क्षेत्र में ही सामान खरीद सकती है। ऐसी मुद्रा के प्रयोग कई देशों में चल रहे हैं। यह मुद्रा उस देश की सरकारी मुद्रा के साथ ही अस्तित्व में रहती है। यह स्थानीय मुद्रा उस क्षेत्र में सामान या सेवायें बेचकर प्राप्त की जा सकती है और केवल उसी क्षेत्र में खर्च की जा सकती है। ऐसी स्थानीय मुद्रायें अपने क्षेत्र से पूँजी बहकर बाहर जाये इस पर रोक डालती है और स्थानीय अर्थव्यवस्था को गति देती है। इसका इस्तेमाल बहुधा ऐसे सामाजिक काम करने के लिये भी होता है जिनके लिये कोई फंड उपलब्ध न हो। उदाहरण के लिये जापान में एक ऐसी व्यवस्था चलती है जिसमें आप जहाँ है वहाँ वृद्ध लोगों की सेवा कर ऐसे अंक अर्जित कर सकते हैं जिनके एवज में आपके बूढे. माता पिता देश के किसी दूसरे भाग में ऐसी ही सेवा प्राप्त कर सकते हैं।

स्थानीय मुद्रा का रूप ऐसा होता है कि केवल ऐसे उद्यम परिवार या व्यक्ति ही इसमें रुचि लेते हैं जो बड़े पैमाने पर स्थानीय उत्पादन खरीदते हैं। क्योंकि इसका उपयोग बाहर से आने वाले सामानों को खरीदने में नहीं हो सकता। स्थानीय मुद्रा को व्यावहारिक बनाने के लिये राष्ट्रीय और स्थानीय मुद्राओं को साथ-साथ चलने की जरूरत सामान्यतः होगी क्योंकि उद्यमों और उपभोक्ताओं दोनों को ही स्थानीय और बाहरी सामान खरीदने की जरूरत होती है। लेकिन ये इतना सरल नहीं है। स्थानीय मुद्रा को यदि केवल सजावटी न होकर लोगों के जीवन और वित्तीय व्यवस्थाओं में बदलाव का जरिया बनना है तो उसे पानी और जमीन जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय नियंत्रण से जुड़ना होगा। लेकिन इन संसाधनों पर स्थानीय नियंत्रण के प्रयास वैश्वीकरण के इस दौर में जरा भी बड़े होते हैं तो बड़ी-बड़ी शक्तिशाली व्यवस्थाओं से टकराते हैं। इसलिये स्थानीय मुद्रा या इससे मिलते जुलते प्रयासों को यदि प्रभावी होना हो तो उन्हें वैश्वीकरण से मोर्चा लेना ही पड़ेगा।

•

लुटेरे बाजार के विरोध के आंदोलन

वैश्वीकरण के साथ बाजार की आक्रामकता खुलकर सामने आती चली गई है और दुनियाभर में विश्व बाजार के खिलाफ आंदोलन हुए हैं। विश्व सामाजिक मंच के महाधिवेशनों में ऐसे आंदोलन इकट्ठा भी होते रहे हैं, जैसा कि मुम्बई में जनवरी 2004 में हुआ था, वैसा आंदोलनों का अंतर्राष्ट्रीय समागम कई देशों में हो चुका है। अधिकांश आंदोलन मध्यम वर्ग के लोगों को इकट्ठा करने में अलग-अलग हद तक सफल हुए हैं तथा यह खयाल भी रखते हैं कि आदिवासी और किसान ही इन बाजार विरोधी आंदोलनों की रीढ़ हैं और उनके संघर्ष व संगठन ही इस लड़ाई को जीतने लायक बना सकते हैं।

दुनियाभर में बाजार को लेकर तरह-तरह के आंदोलन लम्बे समय से होते रहे हैं। संदर्भ के लिए और अपनी सोच व्यवस्थित करने के लिए कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :—

1. महात्मा गांधी के नेतृत्व में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी का आंदोलन।
2. गांधी का खादी और ग्रामोद्योग आंदोलन, जिसमें स्थानीय खपत पर अधिकाधिक जोर है।
3. दक्षिण अफ्रीका में गांधी के नेतृत्व में फेरीवालों का घूम-घूमकर बेचने वालों के अधिकार का आंदोलन।
4. लोहिया के नेतृत्व में 1960 के दशक में 'दाम बांधो' आंदोलन।
5. भारतीय किसान यूनियन का 1970 के दशक से शुरू हुआ कृषि उत्पादन के दाम हासिल करने का राष्ट्र व्यापी आंदोलन।
6. ठेला-गुमटी वालों का विस्थापन विरोधी आंदोलन।
7. फुटकर धंधे में वैश्विक पूंजी, बहुराष्ट्रीय निगमों और बड़े पूंजीपति घरानों की घुसपैठ के विरोध के आंदोलन।
8. खाद्य प्रभुसत्ता का पक्षधर और विकसित देशों द्वारा गरीब देशों में अनाज ठूंसने (थोपने) के विरोध का वाया कम्पेसिना का विश्वव्यापी अभियान।
9. विश्व में कई स्थापनों पर स्थानीय मुद्रा के प्रयोग।
10. शिक्षा के निजीकरण एवं व्यवसायीकरण के विरोध के विश्वव्यापी छात्र आंदोलन।

लोकविद्या, लोकविद्याधर समाज और उनका बाजार

ललित कौल

स्थानीय बाजार (आर्थिक क्रियाओं के मुख्य केन्द्र) का इतिहास सदियों पुराना है लेकिन पिछले करीब तीन सौ सालों से इनका रुतबा निरंतर पिछड़ता रहा है। कई गुजरे दशकों से इनकी बनाई गई चीजों में आधुनिक वर्ग के लोगों की रुचि निरंतर घटती रही है और आज के वक्त में कोई रुचि नहीं है और इनके अपने वर्ग में चीजों को बड़े पैमाने पर खरीदने की क्षमता शायद किसी में नहीं है।

जब आधुनिक यातायात के साधन उपलब्ध न थे तब भारत के कस्बों, गांवों व शहरों में खरीद-फरोख्त के जरिए ये बाजार (आर्थिक केन्द्र) ही थे। इनके अलावा चीजों का आयात और निर्यात समुद्री जहाजों के द्वारा होता था। भारत के कस्बों, गांवों व शहरों के दरमियान व्यापार का साधन बैलगाड़ियां रही होंगी। रोजमर्रा और गैर-रोजमर्रा की चीजों के उत्पादन के साधन भी इनसे जुड़े थे। उत्पादन के तरीकों का ज्ञान/विज्ञान भी किसी एक खास प्रकार के समुदाय को केवल प्राप्त न था, बल्कि हर जाति को उनके द्वारा बनाई गई चीजों के तरीकों का ज्ञान/विज्ञान हासिल था। समस्त व्यापार किसी इने-गिने परिवारों के हाथ में नहीं था, आमतौर पर हर समाज में फैला हुआ था। आर्थिक व्यवस्था किसी एक कानून के अधीन न थी; हर एक राज्य के अपने-अपने कानून के अनुसार उसकी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण हुआ था। ये व्यवस्थाएं न्याय-अन्याय, सच-झूठ इत्यादि की कसौटी पर जैसी भी हों, इनकी एक खासियत यह जरूर थी कि ये स्थानीय लोगों के साथ मेल खाती थीं न कि बाहर से थोपी गई थीं। जिन्हें हम आज स्थानीय बाजार की पहचान देते हैं वास्तव में ये आर्थिक क्रियाओं के मुख्य केन्द्र थे जो आज के दिन बेरोजगार, मुफलिस और लाचार समाज का प्रतीक बन कर रह गए हैं।

लोकविद्याधर समाज की पहचान, उसका मान-सम्मान, अस्तित्व, धर्म, ज्ञान-विज्ञान इत्यादि इसी बाजार से आज भी जुड़ा है। उसके बाजार उसकी लोकविद्या को दर्शाते हैं। सदियों के शोषण को झलते हुए इसकी व्यवस्थाओं को छिन्न-भिन्न होता देखते हुए, खुद को बेसहारा पाते हुए, जितना कुछ यह अपनी विद्या (लोकविद्या) को बचा पाया है उसके बलबूते इसका हर सदस्य (पूरे परिवार सहित) अपनी जीविका के लिए छोटे-छोटे बाजार लगाता आ रहा है और मुफलिसी में अपने परिवार के साथ जिन्दगी बिता रहा है। जब जिन्दगी से निराश हो जाता है तो आत्महत्या कर लेता है लेकिन कोई गलत काम नहीं करता।

यह पिछड़ा हुआ वर्ग नहीं बल्कि ऐसा वर्ग है जो उस लघु जनसंख्या के बाहर है सिर्फ जिनके लिए विकास की योजनाएं भारत सरकार बनाती आ रही है। आधुनिक भारतीय समाज और उसकी व्यवस्थाओं में लोकविद्याधर समाज का वही स्थान है जो हर आम भारतीय को अंग्रेजों के राज्य में नसीब था। लोकविद्याधर समाज का सदस्य नाकाबिल नहीं है, बल्कि उसको अपनी काबिलियत दर्शाने के हर रास्ते भारत सरकार ने बन्द कर दिए हैं।

लोकविद्या के आधार पर जिन उत्पादनों की कल्पना की जा सकती है, वे हैं—नमक, साबुन, कपड़ा, तेल, दूध, दही, घी, मक्खन, अन्न खाद्य, नाना प्रकार के रंग, रंगीन कपड़े और लिबास, लोहा, सोने के जेवर, नाना प्रकार के मसाले, लकड़ी और लोहे की साज-सज्जा, गुड़, शक्कर, वन पदार्थ पर आधारित वस्तुएं इत्यादि।

लोकविद्या जन आंदोलन में स्थानीय बाजार का महत्त्व इसलिए है कि इन बाजारों के अधिक स्तर पर उबरने से ही आंदोलन का सही अर्थ निकलेगा। यह सोचना अति आवश्यक है कि लोकविद्या को लोकविद्याधर समाज में कैसे प्रोत्सहित करें। एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना होगा जिससे जुड़कर लोकविद्याधर समाज के बाशिन्दों में यह उम्मीद जागे कि स्थानीय बाजार की अग्रसरता से ही उनके जीवन के शोषण का अन्त निश्चित है।

ऐसी व्यवस्था के निर्माण के लिए हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि किस हद तक कितने प्रतिशत लोग लोकविद्या के विषयों में जानकारी और रुचि रखते हैं। अपनी विद्या के बलबूत पर वह किन-किन प्रकार की चीजों का निर्माण करते हैं; उनका वितरण और बिक्री कैसे करते हैं; आमतौर पर उनसे खरीददारी कौन करते हैं; किस प्रकार के मूल्य उन्हें अपनी कारीगरी के मिलते हैं; उनकी चीजों के उत्पादन, वितरण और बिक्री में किस-किस प्रकार की बाधाएं आती हैं और आज के दिन में वह इन समस्याओं से कैसे निपटते हैं।

ऐसा करने के लिए हमें गांव-गांव जाकर या फिर उनके प्रतिनिधियों को एक जगह एकत्रित करके इन विषयों पर वक्त-वक्त पर बात करनी होगी। गांव-गांव की राजनीति और उनके अन्दर विभिन्न जातियों की राजनीति को भी सुलझाने का प्रयास करना होगा। जहां-जहां उनके हुनर में कमियां होंगी उनके मिटाने के लिए प्रयास करने होंगे—इसके संदर्भ में ऐसे विद्यालयों का भी निर्माण करना होगा जहां दूसरे गांव के विशेषज्ञ इन्हें ज्ञान/विज्ञान प्रदान करेंगे। कई नजदीकी गांवों को एक आर्थिक क्षेत्र बनाकर इनकी बनाई गई सामग्री के वितरण और बिक्री के लिए ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना होगा, जिसमें वहां के लोगों की मिलीजुली भागीदारी हो। इनके उत्पादनों के लिए स्थानीय भौतिक पदार्थों के गोदामों का निर्माण करना होगा ताकि मजबूरी में इन्हें किसी भी उत्पादन की बिक्री न करनी पड़े।

लोकविद्या के आधार पर यदि लोकविद्याधर समाज की आर्थिक और सामाजिक उन्नति की कल्पना को साकार करना है तो इसके लिए धनराशि का प्रबंध बाहरी स्रोतों से करना होगा। ऐसा हो पाने के लिए एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है, जिसके बलबूते हम धनराशि के स्रोत ढूंढ़ सकते हैं। यह रिपोर्ट भारत सरकार की सरकारी संस्थाओं को पेश करके धनराशि की मांग उनके समक्ष रख सकते हैं। भारत सरकार के सामने अपनी ऐसी मांगे रख सकते हैं जिनकी पूर्ति से लोकविद्या को सार्वजनिक मान्यता मिले और इसका विकास हो लेकिन ऐसा करने से पहले स्थानीय बाजारों को एक उभरते हुए विकल्प की जगह बनानी होगी और इसके लिए हमें लगातार प्रयत्न करने होंगे।

लोकविद्या जन आंदोलन के कई पहलू हो सकते हैं, जैसे—

(1) भारत सरकार के सामने अपनी ऐसी मांग रखना जिनकी पूर्ति से लोकविद्या को सार्वजनिक मान्यता मिले और इसका विकास हो।
(2) लोकविद्याधर समाज की शोचनीय दशा को प्रदर्शित करना।
(3) संघर्ष के कई शान्तिपूर्ण और लोकप्रिय रास्ते अपनाना इत्यादि।

•

लोकविद्याधर समाज के साथ षड़यंत्र

मनुष्य के जीवन के लिये आवश्यक अन्न, वस्त्र, घरेलू सामान व स्वास्थ्य रक्षा से सम्बन्धित वस्तुओं का बाजार सबसे बड़ा होता है। क्योंकि हर मनुष्य अपने पूरे जीवनभर इन वस्तुओं को खरीदता रहता है। इसके विपरीत सजावट व उपभोग की महँगी वस्तुओं का बाजार सीमित होता है, क्योंकि हर कोई उन्हें नहीं खरीदता और खरीदता भी है, तो जिन्दगी में कभी-कभार। लोकविद्याधर समाज का बहुत बड़ा हिस्सा जीवनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन व सेवा कार्यों से जुड़ा है। इस सम्बन्ध को तोड़ने के पुरजोर षड़यंत्र हो रहे हैं।

एक तरफ बड़ी कम्पनियाँ सरकारी नीतियों की मदद से जीवनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन व सेवा क्षेत्र में घुसपैठ कर रही हैं और लोकविद्याधर समाज के हाथों से ये उद्यम छीन रही हैं। इस तरह एक बड़े बाजार पर कब्जा किया जा रहा है। दूसरी तरफ उपभोग व सजावट के सामानों के निर्माण उद्योग में, जिनका बाजार अपेक्षतया छोटा है और जो दूर के व्यापार पर बहुत ज्यादा निर्भर हैं, लोकविद्याधर मजदूर बनकर रहे ऐसी परिस्थितियाँ बनायी जा रही हैं। ऐसे मजदूर जिन्हें अपनी आवश्यकता का हर सामान बड़ी कम्पनियों से खरीदना पड़े। कम्पनियों के दोनों हाथों में लड्डू हैं। यह षड़यंत्र नहीं तो क्या है?

धीमा भोजन आन्दोलन

धीमा भोजन आन्दोलन 1986 में इटली से शुरू हुआ, मौका था मैकडोनाल्ड के फास्ट फूड (शीघ्र तैयार भोजन) के रेस्तरां का खोला जाना। 1989 में पेरिस में 15 देशों के प्रतिनिधियों ने इस आंदोलन का एक घोषणा-पत्र तैयार किया। अब इसमें 132 देशों में लगभग एक लाख से अधिक सदस्य हैं। यह आन्दोलन फास्ट फूड के विकल्प को बढ़ावा देता है और इसके लिये परम्परागत व क्षेत्रीय भोजन की तथा स्थानीय पर्यावरण के अनुकूल बीज, पौधों और पशु सम्पदा के लिये अभियान चलाता है। यह स्थानीय बाजार और टिकाऊ भोजन के अपने उद्देश्यों के साथ-साथ कृषि उत्पाद के वैश्वीकरण के विरोध की राजनीतिक दृष्टि रखता है।

यह एक जमीनी आन्दोलन है व यूरोप में इसका प्रभाव ज्यादा है।

लोकसत्ता के निर्माण के आधार स्थानीय बाजार

प्रेमलता सिंह

आज दिल्ली की सत्ता का अर्थ है शक्तिसम्पन्न केन्द्रीय सत्ता। आजादी के बाद देश की राजनीति ने लोगों में यह भ्रम फैलाया कि एक मजबूत केन्द्रीय सत्ता के बगैर देश की सुरक्षा और विकास सम्भव नहीं है। 'सुरक्षा' यानि पड़ोसी देशों से और 'विकास' यानि यूरोप-अमेरिका की तरह ऐसा मान लिया गया। विभिन्न राजनीतिक दलों ने भी मजबूत केन्द्रीय सत्ता को बनाये रखने वाले विचारों को राजनीतिक बहस का मुद्दा बनाया तथा ऐसी सत्ता पर नियंत्रण हासिल करने के लिए चुनावी दांव-पेंच को अपना मुख्य कार्यक्रम बनाया। सभी दलों ने प्रयासपूर्वक 'सुरक्षा किनसे?' और 'विकास कैसा?' इन सवालों को राजनीति के घेरे से बाहर ही रखा तथा लोगों के मन में उठते इन सवालों को सामने आने ही नहीं दिया।

विकास नही विनाश

दिल्ली की इसी केन्द्रीय सत्ता की सहायता से 'विकास' के नाम पर उत्पादन के समस्त संसाधनों व बाजार पर देश के पूंजीपतियों ने नियंत्रण हासिल कर पूंजी की बेतहाशा बढ़त प्राप्त की। पूंजी की ऐसी बढ़त प्राप्त करने के लिए केन्द्रीय सत्ता की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप लोगों के हाथ से रोजगार छिनते चले गये, मजदूरी पर जीवनयापन करने वालें लोगों की संख्या में निरंतर बढ़ोत्तरी होती चली गई और बेरोजगारों की लम्बी कतार खड़ी होती गई। इस क्रिया में देश की सबसे छोटी इकाई गांव से लगायत कस्बे, नगर, जिले व प्रान्त सहित समूचे देश की पूरी शासकीय-अशासकीय व्यवस्थाएं उक्त केन्द्रीय सत्ता की गुलाम होती गईं। फिर कृषि, कारीगरी, उद्योगों से जुड़ी सभी प्रक्रियाएं इस केन्द्रीय सत्ता के रहमोकरम पर निर्भर होती चली गई हैं। आज दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता का स्वरूप यही है। क्या इसे ही विकास कहा जाना चाहिए?

सुरक्षा किससे?

विकास के नाम पर लम्बी-चौड़ी सड़कें, कम्प्यूटर, परमाणुशस्त्र, ऊंचे-बड़े बांध, बड़े-बड़े शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान, बड़ी अदालतें, बड़े कारखाने और बड़े तथा सजे बाजार इस केन्द्रीय सत्ता द्वारा निर्मित हैं। परन्तु अधिसंख्य सामान्य जन भोजन, वस्त्र, मकान व चिकित्सा के अभाव से जूझ रहे हैं, लोगों के कारोबार उनके हाथ से छीने जा रहे हैं। लोगों द्वारा खून-पसीना एक करके तैयार की गई पूंजी उनके हाथ से निकल कर पूंजीपति वर्ग के पास केन्दित हो रही है और शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान बेरोजगारों की फसल तैयार करके मामूली मजदूर बनाने की राह प्रशस्त कर रहे हैं। तब बहुसंख्य को गरीबी और कष्ट में डालने वाला आज का इस किस्म का विकास किसके लिए है? यह प्रश्न सहज ही उठता है।

बात सुरक्षा की लें तो किनसे सुरक्षा चाहिए? अपने पड़ोसी मुल्कों से अथवा विकराल-राक्षसी पूंजीवादी व्यवस्था से? किसकी सुरक्षा के लिए सेना, पुलिस, गुप्तचर, अदालत और जेल की जरूरतें दिनों-दिन बढ़ रही हैं? किसलिए देश की सेवा एवं उत्पादन की व्यवस्थाएं निजी मालिकाने में दी जा रही हैं? क्या समाज की सम्पत्ति (जल, थल, खनिज) पर, समाज की पूंजी पर जनता डाके डाल रही है? परमाणु परीक्षण से इतने बड़े देश व समाज की जनता को क्या उपलब्धि हुई? इस परीक्षण ने पूरे देश की अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया है। परमाणु शस्त्र के निर्माण, रख-रखाव का भर देश की जनता ढो रही है। फिर सुरक्षा और विकास कौन सा, कैसा और किसका?

दिल्ली की सत्ता का राजनीतिक स्वरूप

पिछले कुछ वर्षों से अल्पमत प्राप्त सरकारें दिल्ली की सत्ता पर काबिज हैं लेकिन फिर भी उक्त दिल्ली की सत्ता का शासन पूरे देश पर है। ग्राम पंचायत का चुनाव ग्रामवासी करते हैं परन्तु पंचायत प्रतिनिधि अपने गांव के लिए कोई भी कार्य योजना अपने ग्रामवासियों के सहयोग से नहीं बना सकते। उनके गांव की कार्ययोजना दिल्ली की सत्ता तय करती है और उसे लागू करने भर की धनराशि ग्राम पंचायत को मिलती है। कभी-कभी धनराशि मिलने का प्रावधान तो होता है परन्तु मिलती नहीं है। ऐसी स्थिति में उक्त जन प्रतिनिधि और उनके अपने ही लोगों के बीच विवाद उठते हैं जो समय-बे-समय आपसी संघर्ष का भी रूप धारण कर लेते हैं। ये विवाद और संघर्ष स्थानीय समाज के लोगों में फूट पैदा करते हैं। यही स्थिति नगरपालिका एवं अन्य स्थानीय सत्ताओं की है। आज ये अल्पमत प्राप्त सरकारें देश की 'सुरक्षा' व 'विकास' की गति को जारी रखने के नाम पर यदि टिकी रह सकी हैं तो महज दिल्ली की सत्ता के गांव तक फैले इन ढांचों के सहारे ही। और ये ढांचे दिल्ली की सत्ता की रक्षा में स्थानीय समाज को एकजुट नहीं होने देते। वरना स्थानीय समाजों के सामान्य नागरिकों के मन में गहरा असंतोष है। क्योंकि कोई व्यवस्था उनके पक्ष में नहीं है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, उद्योग, संसाधन, नागरिक सुविधाएं आदि सभी कुछ सामान्य जन की पहुंच से दूर होती जा रही हैं।

दिल्ली की सत्ता की आर्थिक व्यवस्थाएं

आजादी के बाद लगातार औद्योगीकरण पर जोर दिया गया। इसके लिए बड़ी पूंजी, कच्चे माल, सस्ते श्रम और व्यापक बाजार की जरूरत थी। देश के विभिन्न भागों में स्थानीय समुदायों के पास बिखरी हुई पूंजी को केन्द्रित होने के लिए स्थानिक समाजों की मौजूदा उत्पादन व्यवस्थाओं (कारीगर, किसान और छोटे दुकानदार) का नष्ट होना और पुनः पूंजीपतियों के अनुकूल व्यवस्थाओं का निर्माण होना आवश्यक था। इन कार्यों के लिए पूंजीपति ने राजनैतिक सत्ता का इस्तेमाल किया। केन्द्रीय सत्ताओं ने विभिन्न स्थानीय इकाइयों के मार्फत पूंजीपतियों को उनकी सुविधा के अनुसार व्यवस्थाएं लागू कराई हैं। उदाहरण के लिए किसानों को किस हल से जुताई करना है, कौन से बीज बोने हैं, सिंचाई के लिए कौन सी व्यवस्थायें करनी हैं, किस खेत के किसानों से कौन-सी फसल तैयार करायी जाएगी, अनाजों के रख-रखाव, बाजार-भाव, उत्पादनकर्ता खायें या निर्यात करें, इन सभी बातों की जानकारी 'विकास कार्यक्रमों' के नाम पर किसानों को दी जाती है। इन सभी कार्यक्रमों का परिणाम पूंजी के केन्द्रीयकरण को बढ़ाने के लिए ही होता है, चाहे बड़े उद्योगों के लिए कृषि क्षेत्र से सस्ता कच्चा माल देकर या बड़े उद्योगों में बने कृषि के औजारों उपकरणों, रसायन, बीज एवं अन्य वस्तुओं का बाजार बढ़ाकर या गांव के लोगों का रोजगार छीनकर। यदि किसान अपनी सुविधानुसार कृषि करना चाहे तो ग्राम पंचायत पर दबाव दिया जाता है कि वे इसके लिए किसानों को हतोत्साहित करें। किसानों को सुविधा या सब्सिडी के नाम पर बरगलाया जाता है। अधिक मूल्य प्राप्त होने का लालच पैदा किया जाता है। कुल मिलाकर स्थितियां इतनी जटिल बना दी जाती हैं कि किसान सरकारी तंत्र की व्यवस्थानुसार उत्पादन करने के लिए बाध्य होते हैं और फिर आत्महत्या करने के लिए मजबूर भी। इन सभी कार्यों की व्यवस्था दिल्ली की स्थानीय सत्ता की खण्ड स्तर की इकाइयों से की जाती है। इस तरह गांवों तक फैला यह लोकतंत्र का भ्रम पैदा करने वाला सरकारी तंत्र स्थानीय समाजों को तहस-नहस करने का काम

... शेष पृष्ठ 7 पर

साझा दुनिया का लक्ष्य

किसानों की जमीन की लड़ाई धीरे-धीरे करके एक आर-पार की लड़ाई की शक्ल लेती जा रही है। इसमें जो सबसे बड़ा सवाल है वह यह कि उस पार क्या है? जाहिर है कि जमीन बचाने का यह मतलब नहीं है कि किसान उसी हालत में पड़ा रहे जिसमें वह आज है लेकिन जमीन बचाने का मतलब यह जरूर है कि वह मजदूर नहीं बनना चाहता और अपने परिवार के भरण-पोषण के लिये लखनऊ, दिल्ली या विदेशी ताकतों पर निर्भर नहीं होना चाहता। जमीन न देने का एक और अर्थ है, वह यह कि किसान और बाकी दुनिया के बीच एक नया समझौता हो, यह एक नई साझा दुनिया का समझौता है। इस देश के किसान आन्दोलन पर नजर डालें तो इसका मतलब समझ में आयेगा।

चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत इस देश के जिस महान किसान आन्दोलन के नेता रहे उसमें एक नई साझा दुनिया का आग्रह रहा है। कृषि उत्पाद का दाम माँगकर किसान यह कहता रहा है कि किसानों की आर्थिक स्थिति में इतना सुधार तो होना ही चाहिये कि औद्योगिक और शिक्षित दुनिया के लोग जैसे रहते हैं वैसे किसान परिवार भी रह सकें। बिजली के रेट और आपूर्ति व पानी की मांग ने यही रेखांकित किया है कि इस देश के राष्ट्रीय संसाधनों में किसान की भी उतनी ही भागीदारी रहे जितनी और लोगों की है। कर्ज और ब्याज का सवाल आन्दोलन द्वारा बार-बार उठाया जाना यही दर्शाता है कि देश के वित्तीय संसाधनों के संदर्भ में भी किसान के प्रति अन्याय दूर होना चाहिये। कुल मिलाकर आन्दोलन का संदेश यह है कि एक ऐसी दुनिया बनाइये जिसमें किसान तथा और लोग चाहे वे मध्यम वर्ग के हों चाहे और भी पैसे वाले हों, इस देश के बराबर के नागरिक हों। किसान किसी को खत्म करने की माँग नहीं करता केवल एक साझा दुनिया की माँग करता है। ध्यान से देखें तो हम पायेंगे कि बुनकर व सभी कारीगर, आदिवासी, छोटा-मोटा धंधा करने वाले, महिलायें, मजदूर, दलित, मुसलमान, सभी एक साझा दुनिया की ही माँग करते हैं। अगर आप उन्हें निरीह समझेंगे तो ये सब दो जून की रोटी, बच्चों की शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा की माँग करते दिखाई देंगे और यदि आप इन्हें इस देश का एक सम्पूर्ण नागरिक समझेंगे तो इन्हीं माँगों के जरिये वे साझा दुनिया की माँग करते हुये दिखाई देंगे। एक ऐसी दुनिया जो सबकी हो।

साझा दुनिया का निर्माण और पुनर्निर्माण यह भारतवर्ष की महान् परम्परा रही है। इस देश के सबसे बड़े इतिहासकार दामोदर धर्मानन्द कोसाम्बी ने यह बताया कि आर्यों के समय से लेकर अंग्रेजों के आने तक यहाँ के लोगों ने आपस में सम्मानजनक समझौते किये और हर बार नई परिस्थितियों में एक नई साझा दुनिया का निर्माण किया। सूफी और संत परम्परा भी यही कहती है। लोकविद्या की महान ज्ञान परम्परा भी यही कहती है। महात्मा गांधी का पूरा जीवन ही एक साझा दुनिया बनाने का संदेश है। एक साझा दुनिया का निर्माण ही अब किसान आन्दोलन का सचेत लक्ष्य होना चाहिये। इसी में किसान का भविष्य है, इस देश का भविष्य है और इस दुनिया का भविष्य है।

•

लालच पर अंकुश कैसे लगे?

गांधीजी ने कहा था कि इस पृथ्वी पर जो भी है, उससे सबकी जरूरतें पूरी हो सकती हैं, लेकिन एक आदमी का भी लालच पूरा नहीं किया जा सकता। एक तरफ स्वतंत्र बाजार का विचार है, जहां खुलेआम लालच और पैसे वालों की पक्षधरता देखी जा सकती है, वहीं दूसरी ओर दुनिया की सारी सभ्यताओं में मिलने वाले वे विचार हैं जो मनुष्य की गतिविधि पर एक अंकुश, सीमा, नियंत्रण अथवा मर्यादा की बात करते हैं। सभी ने अपने-अपने तरीकों से अपनी संस्कृति और दर्शन के अनुरूप संयम और सामाजिक नियंत्रण के लिए व्यवस्थाओं का निर्माण भी किया। पूंजीवाद ने शुरू से ही इन सभी विचारों और व्यवस्थाओं को सिरे से नकार दिया, और स्वतंत्र बाजार व निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त और व्यवहार को आकार दिया। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में ये विचार अपने चरम पर हैं और उसी के हिसाब से वैश्विक पूंजी व्यवस्थाओं को आकार देती है। बाजार और निजी सम्पत्ति पर अंकुश के अलावा इस स्थिति से मोर्चा लेने का और कोई तरीका नहीं है।

स्थानीय बाजार का विचार ऐसे ही सामाजिक अंकुश की व्यवस्था की बात करता है। अपने-अपने दर्शन के अनुरूप विभिन्न संस्कृतियां और भौगोलिक क्षेत्र स्थानीय बाजार के ठोस विचार तैयार कर सकते हैं। निजी सम्पत्ति पर सीमा बांधना ऐसे ही विचार और व्यवस्था का अंग होना भी अनिवार्य दिखता है। जैसे आज भारत के राष्ट्रपति का वेतन डेढ़ लाख रुपये प्राति माह है, इससे अधिक व्यक्तिगत कमाई किसी की हो इसका कोई कारण नहीं है। अगर इसकी अनुमति है तो वह केवल चंद लोगों का लालच पूरा करने के लिए है। एक तरफ ऐसे कानूनों की जरूरत है, जो कमाई पर सीमा डाले और दूसरी तरफ उसे बाजार व्यवस्था की जरूरत है, जो सबको कमाई का मौका दे, जिसका पहला कदम है—रोजगार छीनने की प्रक्रियाओं पर तुरन्त रोक लगे। बाजार पर अंकुश के बगैर यह सम्भव नहीं है। उस व्यवस्था की जरूरत है, जिसमें हर व्यक्ति को अपने ज्ञान और हुनर के बल पर एक न्यूनतम कमाई के मौके हों। एक लोकविद्या जीवनयापन कानून बनाना चाहिए जिसके अंतर्गत सभी को अपनी विद्या के बल पर कमाई का बुनियादी हक मिले। इस तरह निजी सम्पत्ति पर सीमा बांधना और लोकविद्या रोजगार से बेदखली पर पूरी रोक ये दो ऐसे कदम हैं, जो बाजार पर अंकुश डालने और अधिकाधिक बराबरी के स्थानीय बाजारों के निर्माण का रास्ता खोलते हैं।

•

परिवर्तन की राजनीति की ओर

पिछले 20 वर्षों में अमेरिकी साम्राज्य विस्तार ही पाता गया। अब वह दुनिया के लगभग हर देश में राजनीतिक और आर्थिक प्रक्रियाओं में खुला दखल ले रहा है और उसके मनमाफिक बात न हुई तो युद्ध कर रहा है। इस्लामी लड़ाकुओं और अमेरिका के बीच संघर्ष दुनियाभर की मीडिया और बहस पर इस कदर छाया हुआ है कि और बातें छिप-सी जाती हैं। शोषित और तिरस्कृत लोगों के संघर्ष इस दौर में वैचारिक जटिलताओं में फँसे रहे हैं किन्तु अब कुछ नये विचार धीरे-धीरे करके बहस में आ रहे हैं तथा संघर्षशील कार्यकर्त्ताओं में एक नई आशा का संचार भी हो रहा है। इस सिलसिले में नीचे दिये बिन्दु एक नये किस्म की राजनीतिक प्रक्रिया की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं।

1. **धरती माँ–** दक्षिण अमेरिका के देश बोलिविया ने जलवायु परिवर्तन की अन्तर्राष्ट्रीय बहसों में धरती माँ के अधिकार की बात सामने लाई है। धरती माँ के अधिकार का एक अंतर्राष्ट्रीय महाधिवेशन अप्रैल, 2010 में बोलिविया में हुआ। अब वे धरती माँ के अधिकार का एक विस्तृत कानून बनाने जा रहे हैं जो स्थानीय समाजों और पर्यावरणीय संतुलन की मूल दृष्टि से विभिन्न संस्कृतियों, उनकी ज्ञान परम्पराओं, प्रकृति के विविध रूपों आदि की सुरक्षा की गारण्टी देगा।
2. **प्रकृति के अधिकार–** दक्षिण अमेरिका के ही एक और देश इक्वाडोर ने 'प्रकृति के अधिकार' के नाम पर कानून बनाया है। इसमें मूल दृष्टि यह बताई है कि केवल मनुष्य जाति के ही अधिकार नहीं होते बल्कि पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं, नदियों-पहाड़ों सभी के अधिकार होते हैं और राज्य की ये जिम्मेदारी है कि उन अधिकारों की रक्षा करें।
3. **खाद्य सम्प्रभुता–** वाया-कम्पेसिना के नाम से एक अंतर्राष्ट्रीय किसान संगठन है, जिसने खाद्य सम्प्रभुता का विचार सामने लाया है। इसका अर्थ है कि किसान समाज अपने आस-पास के संसाधनों के बल पर स्थानीय समाज के लिये भोजन की आपूर्ति करे यह किसानों का अपना कार्यक्षेत्र है तथा इसमें कोई भी बाहरी दखल नहीं होनी चाहिये। यूरोप और अमेरिका खाद्य सुरक्षा के नाम पर गरीब देशों में खाद्यान्न निस्तारण करते रहे इसका वे सख्त विरोध करते हैं। उनका कहना है कि सबको पेट भर भोजन मिले इसके लिये खाद्य सम्प्रभुता का रास्ता एकमात्र रास्ता है।
4. **ज्ञानमुक्ति मंच–** यूरोप के छात्र आन्दोलन ने एक ज्ञान मुक्ति मंच बनाया है। इस आन्दोलन की समझ यह है कि मशीन का पूँजीवाद अब ज्ञान के पूँजीवाद में तब्दील हो गया है और विकसित देशों के राज्य तथा बड़े-बड़े निगम शिक्षा में सुधार के नाम पर शिक्षा का निजीकरण करके ज्ञान पर पूँजीपति वर्ग का कब्जा कराते जा रहे हैं। इस छात्र आन्दोलन ने फरवरी, 2011 में पेरिस में एक अंतर्राष्ट्रीय छात्रसभा करके 'ज्ञान मुक्ति मंच' का निर्माण किया। Edu-factory नाम का समूह/संगठन इस आंदोलन का वैचारिक नेतृत्व कर रहा है। इस छात्र आन्दोलन ने तुनिशिया जाकर भूमध्य सागर के दोनों तरफ के छात्रों की आपसी एकता के प्रयास शुरू किये हैं। यह छात्र आन्दोलन राष्ट्रीय सरहदों को खुलेआम चुनौती देने की बात भी कर रहा है।
5. **लोकविद्या–** 1998 में वाराणसी में हुये लोकविद्या महाधिवेशन और बाद में सारनाथ में बने विद्या आश्रम ने किसानों, कारीगरों, आदिवासियों, छोटा-छोटा धंधा करने वालों और महिलाओं के संघर्षों के संदर्भ में लोकविद्या का विचार परिवर्तन की बहस में लाया है। इन्हीं समाजों की विद्या को लोकविद्या कहा गया है और यह कि इनके और समाज के भविष्य का नेतृत्वकारी विचार लोकविद्या ही है। समझ यह भी है कि ज्ञान की दुनिया की ऊँच-नीच समाप्त किये बगैर गरीबी और गैर-बराबरी को समाप्त नहीं किया जा सकता। सत्ताधारी समाज लोकविद्याधर समाजों को उनकी जमीन और धंधों से विस्थापित करके अपने लिये एक ऐशोआराम की दुनिया बना रहे हैं। इसे रोकने की ताकत केवल लोकविद्याधर समाजों की आपसी एकता ही पैदा कर सकती है। एक साझा दुनिया बनाने का आधार लोकविद्या में होता है। विद्या आश्रम लोकविद्याधर समाज के ज्ञान आन्दोलन के निर्माण की दिशा में नवम्बर, 2011 में लोकविद्या जन आन्दोलन का पहला महाधिवेशन वाराणसी में आयोजित कर रहा है।

•

ऐतिहासिक एनकाउन्टर

2मई 2011 को अमेरिकी सिपाहियों ने ओसामा बिन लादेन का एनकाउन्टर कर दिया। एबटाबाद के घर में मारा, हेलीकाप्टर में ले जाते वक्त मारा, पहले से कहीं से मारकर लाये थे और वहाँ दिखा

दिया, पता नही क्या किया। लाश तक को तो किसी ने देखा नहीं। कुछ भी हो सकता है और यह पता नहीं चलेगा जैसा कि किसी भी एनकाउन्टर में होता है। एबटाबाद के निवासी और पाकिस्तानी अधिकारी जरूर कुछ ज्यादा जानते होंगे, लेकिन मीडिया छापेगा तब न किसी और को पता चलेगा। चाय की दुकानों में और दोस्तों के फोन में यह बात खड़खड़ाती रही कि क्या ओसामा वास्तव में मार दिया गया? और यह भी कि क्या ओसामा वास्तव में इतने दिन जिन्दा था? अभी तो अमेरिका ने सारे स्वर दबा दिये हैं। तुरन्त की अमेरिकी जरूरतों और उनके डर के चलते इस पूरे घटनाक्रम की पारदर्शिता शून्य रही है। इसका बड़ा खामियाजा अमेरिका को भुगतना पड़ेगा। अब ओसामा की मनुष्य से बड़ी एक तस्वीर बनेगी, किंवदन्तियाँ पैदा होंगी और करोड़ों की तादाद में लोग उससे प्रेरणा प्राप्त करेंगे। ध्यान रहे ईसा मसीह के अलावा पश्चिम के सभी मसीहा हाथ में तलवार लिये होते हैं। ओसामा मसीहा चाहे न बन पाये उनकी तलवार न उनके खिलाफ जाने वाली है और न मुसलमानों के खिलाफ जायेगी।

कुछ लोग इसे ईसाइयों और मुसलमानों के बीच की लड़ाई मानते हैं। और कुछ ने सभ्यताओं की टकराहट का सिद्धान्त बनाया है। कुछ इसे इस्लाम की अमेरिकी साम्राज्य को दी जा रही चुनौती मानते हैं और कुछ इसे साम्राज्यवाद को दी जाने वाली चुनौतियों की ही एक कड़ी मानते हैं। जहाँ लोग तादाद में रहते हैं, वहाँ से साम्राज्यवाद के लिये चुनौती उठना लाजिमी भी है। चीन, वियतनाम, कम्पुचिया, बर्मा (म्यांमार), भारत, ईरान, इराक, अफगानिस्तान, मिस्र, गिनते चले जाइये। जहाँ लोग तादाद में रहते हैं वहाँ साम्राज्यवाद से लड़ाई लड़ने लायक बनती है और उसे संगठित करने वाला नेतृत्व पैदा होता है तथा समय, स्थान व परम्पराओं के अनुरूप विचारधारायें इन चुनौतियों और लड़ाइयों की सेवा में पैदा होती हैं। ओसामा की चुनौती के गुण-अवगुण से दूर यह तो मानना ही पड़ेगा कि इससे अमेरिका का अजेय होने का दम्भ टूट गया और फिर टूटता ही चला गया। और

जिरोनिमो अमर हैं

दमन, लूट और विस्तारवाद के खिलाफ संघर्ष करने वालों के बीच भाईचारा बने इसके लिये साम्राज्यवादी ही बहुत बार काम कर देते हैं चाहे जाने-अनजाने चाहे सत्ता के नशे में। अमेरिका ने ओसामा बिन लादेन को पकड़ने और मारने की जो फौजी रणनीति बनायी उसका गुप्त नाम था जेरोनिमो। जेरोनिमो अमेरिका के मूल निवासियों का एक बहुत बड़ा लड़ाकू व्यक्तित्व रहा है। अमेरिका के दक्षिणी भाग में अपाचे के नाम से जाने जाने वाले अमेरिकी आदिवासी रहते थे। इन्होंने यूरोप से आकर अमेरिका में बसे साम्राज्यवादियों के विस्तार का जबर्दस्त विरोध किया। 1850-1900 के बीच लड़ाइयाँ लगातार चलती रहीं। अपाचे नेतृत्व में जेरोनिमो वह नाम है जिसे पकड़ने में उस वक्त की अमेरिकी फौज को लोहे के चने चबाने पड़े।

ओसामा बिन लादेन के नाम पर अमेरिकी प्रशासन को जेरोनिमो याद आ जाये इसका एक ही मतलब है। अमेरिका खुद को वैसा ही फौजी विस्तार करता हुआ आज भी देख रहा है जैसा फौजी विस्तार उसने अमेरिकी महाद्वीप के मूल निवासियों के खिलाफ किया था और ओसामा बिन लादेन को इस विस्तार में बाधा के रूप में।

•

अब जिस तरह ओसामा को मारा है उसका संदेश यही है कि अमेरिकी ताकत एक तेज ढलान पर है। अमेरिका का राष्ट्रपति बराक ओबामा जो अफगानिसतान से बेनकाब होना शुरू हुआ था उसकी नकाब अब पूरी तरह उतर गई है।

•

लोकविद्याधर समाज की एकता में बाजार को चुनौती है

सुनील सहस्त्रबुद्धे

वर्तमान बाजार जरिये विकसित किये जा रहे शोषण रूप चलते उत्पादन में लगे अपने श्रम और कौशल से दुनिया चला रहे विभिन्न सामाजिक घटकों के बीच के अन्तर घटते चले जा रहे हैं। वैश्वीकरण किसान, मजदूर, स्त्री, आदिवासी और कारीगर को एक-सी आर्थिक स्थिति में ढाल रहा है। किसान के पास अपनी छोटी-सी जमीन होगी, कारीगर के पास घरेलू उद्योग लायक मशीन और औजार होंगे। दोनों को ही उत्पादन क्रियाओं के लिये आवश्यक धन उधार मिल सकेगा, वे अपने श्रम, हुनर, प्रकृति व अन्य पदार्थों की जानकारी, प्रबन्धन की क्षमताओं और पारिवारिक श्रम व सहूलियतों का इस्तेमाल करके उत्पादन करेंगे। उत्पादित वस्तुओं को बाजार में उन्हीं के लोग बेचेंगे किन्तु इस पूरी प्रक्रिया के लाभ का कोई भी अंश उसके पास वापस नहीं आयेगा।

आज का बाजार

एक उदाहरण से हम इसे समझें। सन् 1998 में खाद्य तेल को लेकर एक बहुत बड़ा हंगामा हुआ। हल्ला यह हुआ कि खाद्य तेल में मिलावट के चलते एक बहुत खराब बीमारी फैल रही है। मिलावट का आरोप डिब्बाबन्द तेल बेचने वाली कुछ बड़ी कम्पनियों पर लगा और उन्होंने यह आरोप माना भी। सरकार ने 'अत्यधिक गम्भीर' रुख अपनाते हुए खाद्य तेल निर्माण और उसकी खरीद-बिक्री को कड़े नियमों के अन्तर्गत लाने की बात की और यह प्रस्ताव किया कि खुले तेल की बिक्री पर पाबन्दी लगा दी जायेगी। दो-तीन हफ्ते के लिए खुला तेल बेचने वाली सारी छोटी-छोटी दुकानें स्थानीय पुलिसिया दमन की शिकार हुईं। और धीरे-धीरे करके पुरानी स्थितियाँ वापस बरकरार हो गईं। खुला तेल भी बिकने लगा और सभी तरह के डिब्बाबन्द तेल भी बिकने लगे। किन्हीं भी राजनैतिक दलों ने सरकार के अन्दाज का विरोध नहीं किया। जिसका संकेत यह है कि जिन भी दबावों के अन्तर्गत हो किन्तु राजनीतिक क्षेत्र में यह आम राय बन चुकी है कि खुले तेल की बिक्री बन्द हो जानी चाहिए और केवल डिब्बा-बन्द तेल बेचने की अनुमति होनी चाहिए। यह इतना बड़ा निर्णय है कि इससे करोड़ों की संख्या में लोग प्रभावित होंगे और लाखों करोड़ का धन्धा व लाभ हाथ बदलेगा। इसलिए इसकी खिलाफत भी बहुत बड़ी होगी, निराशा, तबाही और तोड़-फोड़ भी होगी। नतीजतन सरकार इस हिसाब से कदम उठायेगी कि उसे कम-से-कम नुकसान उठाना पड़े। इसी क्रम में खुले तेल की बिक्री बन्द करने का प्रस्ताव सामने आ चुका है अब मौके और माहौल की तलाश रहेगी जिसमें आगे के वैधानिक कदम उठाये जा सकेंगे।

किसान

कल को एक किसान के मुँह से आपको यह सुनने को मिल सकता हैः साहब, देखिये! जमीन मेरी है, उस पर सरसों की खेती करने का निर्णय मेरा है, बीज मैं खरीदकर लाया हूँ, मेरी ही देखरेख में मेरे परिवार वालों ने मेरे साथ मिलकर मेहनत की है और सरसों पैदा की है। मेरे भाई की पास के बाजार में एक छोटी-सी दुकान है जिसमें उसने एक तेलघानी लगा रखी है। मेरी सरसों मेरा भाई अपनी ही तेलघानी पर पेरता है। जो तेल निकलता है उसे वह बेच नहीं सकता। हर तीसरे दिन एक मेटाडोर आती है और सारा तेल ले जाती है। यह तेल उसी मेटाडोर में डिब्बे में बन्द पैक होकर वापस आता है। यह डिब्बाबन्द तेल मेरा भाई अपनी दुकान पर बेचता है। आप बताइये कि यह कैसी अर्थव्यवस्था है जिसमें उस डिब्बा कम्पनी वाले के पास शहर में कई मकान हैं, उसके बच्चे अच्छे कपड़े पहनते हैं और महँगे स्कूलों में पढ़ने जाते हैं जबकि मेरे ऊपर कर्ज बढ़ता जा रहा है और मैं न बच्चों को कालेज भेज सकता हूँ और न घर वालों का बीमारी में ठीक से उपचार ही करा सकता हूँ।

कारीगर

यही कहानी श्रमिक कारीगर की होगी। शेड उसका होगा, औजार उसके होंगे, मेहनत उसकी और उसके परिवार वालों की होगी, लोहा, लकड़ी, मिट्टी, काँच, कपास, धागा, प्लास्टिक इत्यादि से जो वस्तुयें वह बनायेगा वे भी उसी की मिल्कियत की होंगी। केवल स्थिति यह होगी कि खरीद-बिक्री के जो मौके उसे मिलेंगे उन्हें तय करना उसके हाथ में नहीं होगा। खरीद और बिक्री की हर क्रिया में वह नुकसान उठायेगा।

स्थानीय बाजार का विचार

स्थानीय बाजार का विचार खरीद-बिक्री की उन व्यवस्थाओं का विचार है जिनमें ऐसा नहीं होगा। तेल के धन्धे का सारा लाभ डिब्बा कम्पनी नहीं उठा सकेगी और कारीगरी के काम का सारा लाभ वित्तीय संस्थाएँ और व्यापारी नहीं उठा सकेंगे। ऐसा करने का एकमात्र तरीका यह है कि बाजारों पर उनके इर्द-गिर्द का स्थानीय समाज अपना कब्जा हासिल करे तथा व्यापार को निष्कासित करके उन बाजारों का पुनर्निर्माण करे। आज के स्थानीय बाजारों पर स्थानीय समाजों का कब्जा और उन बाजारों का पुनर्निर्माण ही वैश्वीकरण को दी जा सकने वाली चुनौती का मुख्य रूप है।

भारत गाँवों, कस्बों और छोटे-छोटे नगरों एवं शहरों का देश है। इनमें से किसी भी बस्ती में आप चले जायें अधिकांश लोग किसानी और कारीगरी से जुड़े हुए मिलेंगे। छोटी-छोटी जोतों के मालिक किसान और अपने ही घर या आसपास काम करने वाले कारीगर ये कृषि और उद्योगों के प्रतिनिधि कार्यकर्त्ता हैं। इन्हीं में से और इन्हीं से जुड़े छोटे दुकानदार हैं जो खुद व्यापारियों के शिकंजे में होते हैं। ये लोग अपने परिवार के साथ एक स्थानीय समाज का निर्माण करते हैं। सरकारी कर्मचारी, बड़े उद्योगों के तकनीकी मजदूर और स्कूल-कालेज के अध्यापक अधिकतर इस स्थानीय समाज के हित में न बात करते हैं, न काम करते हैं। वैश्वीकरण के युग में किसानों और कारीगरों के हित एक-दूसरे से इतना मेल खाते हैं कि किसान कारीगर एकता में स्थानीय समाज की एकता का स्वाभाविक आधार मालूम पड़ता है। स्थानीय बाजारों पर कब्जा करके उनका पुनर्निर्माण करने के लिये ऐसी ही स्थानीय समाज की एकता जरूरी है । स्वायत्त स्थानीय समाजों से बना हुआ समाज ही शोषण से मुक्त होने की और अपने सदस्यों को न्याय और सम्मान देने की अपेक्षा रख सकता है। स्वायत्त स्थानीय समाज की पहचान ही यह है कि उसका अपना स्थानीय बाजार होता है।

स्थानीय बाजार आन्दोलन

इस सिलसिले में एक महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम पर ध्यान देना अनिवार्य है क्योंकि उसमें स्थानीय बाजार आन्दोलन के ठोस प्रारम्भिक बिन्दु हो सकते हैं। यह है शहरों की पटरियों, चौराहों और मोहल्लों में लगनेवाली छोटी-छोटी दुकानों को शासन द्वारा बलपूर्वक उजाड़ने की प्रक्रिया। यह एक बहुत बड़ा घटनाक्रम है, यह उजाड़ अभियान पूरे देशभर में चल रहा है। शायद तीसरी दुनिया के और देशों में भी चल रहा हो। इसके संवैधानिक, नागरिक अधिकारों से सम्बन्धित, नगर नियोजन से सम्बन्धित, रोजी-रोटी और विस्थापन से सम्बन्धित तथा बाजार से सम्बन्धित सभी पक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। पहला तुरन्त दिखाई देने वाला पहलू यह है कि जो धन्धा पटरियों पर होता था वह पक्की दुकानों में स्थानान्तरित हो जायेगा। इसकी मात्रा काफी बड़ी है। यदि 500 रू॰ प्रतिदिन का धंधा करने वाली 20 हजार दुकानों को उजाड़ दिया जाये तो लगभग एक करोड़ रूपये प्रतिदिन का धंधा उजड़ता है। और जब यह पक्की दुकानों में स्थानान्तरित होगा तो दो-ढाई करोड़ का बन ही जायेगा। इतना ही नहीं बल्कि इससे पैसे की गति, निवेश व इनसे सम्बन्धित व्यापारिक पहलुओं पर जो प्रभाव पड़ेगा वह भी व्यापार और धनी वर्गों के हितों में ही होगा। जो लोग उजड़ेंगे वे सस्ते हुनर और श्रम के स्रोतों में शामिल हो जायेंगे।

दूसरी बात यह है कि पटरियों पर का यह बाजार शहर के बाजार के अंदर ही एक ऐसा बाजार है जो व्यापार के नियमों का बहुत हद तक पालन नहीं करता है। बस्तियों से घनिष्ठ सम्पर्क में होने के चलते और गरीब आदमी के जीवन की कठिनाइयों का अपना अनुभव रखने के नाते पटरियों के दुकानदार पहले अपने को श्रमिक किसान और कारीगर की दुनिया से जोड़ते हैं न कि व्यापार की दुनिया से। इस सबके चलते शहरी बाजार के अंदर एक स्थानीय बाजार बना रहता है।

सभी जगह यह उजाड़ अभियान तगड़े पुलिस बल की उपस्थिति में किया गया है और विरोध को तुरन्त बलपूर्वक दबाया गया है। महत्वपूर्ण बात यह है जो स्वाभाविक भी है कि सरकारी दस्ते को सभी जगह ऐसे विरोध का सामना करना पड़ा है कि उन्हें कई बार वापस भी जाना पड़ता है। यह विरोध तब तक असंगठित और छिटपुट बना रहेगा जब तक इन दुकानदारों को, किसानों को और शहर की कारीगर व श्रमिक बस्तियों को स्थानीय बाजार आन्दोलन के तहत संगठित नहीं किया जायेगा।

•

खाद्य और वस्त्र के उद्योग व बाजार स्त्रियों के लिये आरक्षित हों

1990 के दशक में उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलो में नारी हस्तकला उद्योग समिति ने स्त्रियों द्वारा निर्मित उत्पादन के लिये स्थानीय बाजारों के पुनर्संगठन की मांग को सार्वजनिक बहस में लाया। स्थानीय बाजार आन्दोलन को स्त्रियों की शक्ति और ज्ञान की पुनर्प्रतिष्ठा का आधार मानते हुए वस्त्र और खाद्य के क्षेत्र स्त्रियों के लिये आरक्षित होने चाहिये इसकी पुरजोर वकालत समिति ने की।

स्त्रियों के स्थानीय बाजार आन्दोलन की समझ यह रही कि भोजन और वस्त्र मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकतायें हैं और समाज को इन वस्तुओं की सतत आवश्यकता है। पौष्टिकता, गुणवत्ता, सम्यक आपूर्ति और जन रुचि का सीधा रिश्ता काफी हद तक इनके विकेन्द्रित उत्पादन में हैं। सभी स्त्रियां इन दोनों क्षेत्रों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार का ज्ञान एवं कौशल रखती हैं। खाद्य क्षेत्र में अनाज की पैदावार से लेकर खलिहान तक की प्रक्रियायें और फिर भण्डारण, सफाई, पिसाई, विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ बनाना, उनका संग्रहण आदि का कौशल अधिकांश स्त्रियों के पास है। उसी प्रकार वस्त्र निर्माण में कपास या ऊन की पैदावार से लेकर, कताई, बुनाई, रंगाई, छपाई, सिलाई, कढ़ाई आदि का कौशल भी अधिकांश स्त्रियों के पास है। कुल मिलाकर वस्त्र उद्योग और खाद्य पदार्थ निर्माण के उद्योग ऐसे दो क्षेत्र हैं , जिनके द्वारा बहुसंख्य स्त्रियां अपने ज्ञान का उपयोग करके अधिक सक्रिय और खुशहाल जीवन हासिल कर, परिवार और समाज में अपनी हैसियत को पुनर्स्थापित कर सकती हैं।

वैश्वीकरण के तहत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने दुनिया भर के बाजारों में बिकने वाले खाद्य पदार्थ व वस्त्र की उत्पादन प्रक्रियाओं पर नियंत्रण करने का अभियान छेड़ा हुआ है। इसलिये खाद्य और वस्त्र उद्योगों को स्त्रियों की विद्या की प्रतिष्ठा के आग्रह पर पुनर्संगठित करने का आन्दोलन न केवल एक सशक्त स्त्री आन्दोलन का आधार बनता है, बल्कि स्त्रियों को शोषण के चक्र से बाहर लाने और वैश्वीकरण के खिलाफ एक प्रभावी चुनौती खड़ी करने का आधार भी बनता है।

•

बाजार मोड़ो अभियान शुरू हो

बाजार मनुष्य की सुविधा के सार्वजनिक स्थान हैं। लोग अपने जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं का लेन-देन यहँ करते हैं और इस लेन-देन के मार्फत एक-दूसरे से आर्थिक, सामाजिक और कई व्यापक अर्थों में गतिशील सम्बन्ध बनाते हैं। बाजार वे स्थान भी हैं, जहाँ मनुष्य द्वारा निर्मित सम्पदा का बँटवारा होता है। यह बँटवारा बराबर हो यानी सभी का बाजार के लेन-देन में मोटा-मोटी बराबर का हिस्सा हो, तो यह न्यायसंगत बाजार कहा जायेगा। लेकिन किसी को बहुत लाभ और किसी को बहुत हानि हो, तो ये बाजार लुटेरों का डेरा कहलायेगा।

पिछले 100 साल से बाजार का तंत्र कुछ इस तरह विकसित होता चला गया है कि इसमें लोकविद्या के बलपर बनी वस्तुओं का मान-मूल्य घटता ही चला गया है और ऐसा बाकायदा सरकारी नीति और कानून के द्वारा किया गया है। किसान की फसल का मूल्य लागत से भी कम लगाना, कारीगर की बनायी वस्तु को मशीन से बनी वस्तु से स्पर्धा में खड़ा करना, आदिवासी के श्रम को सस्ते-से-सस्ता बना देना, महिलाओं को बेगारी के लिये मजबूर करना, छोटे-छोटे दुकानदारों का धन्धा बड़ी कम्पनियों को दे देना आदि सरकारी नीति के तहत ही होता रहा है। नतीजा यह है कि लोकविद्याधर समाज जितनी बार बाजार में आता है उतनी बार ठगा जाता है, लूट लिया जाता है। उसे अपनी विद्या, श्रम और उत्पादन को सस्ते में बेचना पड़ता है। यही आज की व्यवस्था का सबसे बड़ा अन्याय है। इस अन्याय के चलते बाजार वे सबसे प्रभावी सार्वजनिक स्थान बने हैं जो देखने के लिये तो सबके हैं लेकिन यहाँ से मुनाफा केवल वे ही उठा पाते हैं जिके पास पहले से बड़ी पूँजी का धन्धा हो। गाँव और दूर-दराज के बाजार में पूँजीपति खुद उपस्थित नहीं होते, बल्कि उनके उत्पाद ही मुनाफा खींचकर उनके पास पहुँचाते हैं। वैश्वीकरण के बाद यह प्रक्रिया तेज हो गई है। इस प्रक्रिया को और तेज व व्यवस्थित करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी तथा सड़क व यातायात की सुविधाओं पर सरकार अधिक-से-अधिक खर्च करने को तैयार है। आयात-निर्यात एवं बाजार से सम्बन्धित हजारों नये कानून बनाये गये हैं जो बाजार को एक ऐसी ढलान के रूप में विकसित करते हैं जहाँ पर लोकविद्याधर समाज के ज्यादा-से-ज्यादा लोग आयें और उनकी विद्या, श्रम और उत्पादन के हर सौदे से पैदा मुनाफा बहकर पूँजीपतियों की झोली में इकट्ठा होता रहे। लोकविद्याधर समाज की गरीबी का कारण बाजार की इसी व्यवस्था के चलते है। इस बाजार को लोकविद्याधर समाज की ओर मोड़े बिना गरीबी से मुक्ति का रास्ता नहीं बनता।

बाजार मोड़ो अभियान लोकविद्याधर समाज की एकजुट ताकत से बना एक ज्ञान आन्दोलन है। इस ज्ञान आन्दोलन का आग्रह है कि बाजार में लेन-देन का आधार, वस्तु के निर्माण में लगे ज्ञान की गुणवत्ता, ज्ञान की सामाजिकता, निर्माणकर्त्ता की स्थानीयता, प्रौद्योगिकी के प्रकार, पूँजी का पैमाना, मनुष्य जीवन में उस वस्तु विशेष की प्राथमिकता आदि से तय हो।

'बाजार मोड़ो' का आवाहन लोकविद्याधर समाज अपने ज्ञान के दावे के साथ करता है। संसाधनों के इस्तेमाल और पुनर्निर्माण का ज्ञान, प्रकृति से मैत्री के साथ वस्तुओं के निर्माण का ज्ञान, बराबर के लेन-देन की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्ताओं का ज्ञान व विभिन्न ज्ञान धाराओं के साथ मिल-जुलकर रहने का ज्ञान यह लोकविद्याधर समाज के ज्ञान का रूप है। यह लोकविद्या है। 'बाजार मोड़ो' अभियान लोकविद्या के दावे के साथ निम्नलिखित मुद्दों पर जनमत बनायेगा—

(1) जीवनावश्यक वस्तुओं (खाद्य-वस्त्र-घरेलू सामान) का उत्पादन व विनिमय स्थानीय क्षमताओं (पूँजी, श्रम, कला और विद्या) के लिये आरक्षित हो।
(2) लोकविद्या के बल पर हो रहे जीवनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन एवं विनिमय के लिये लिये गये कर्ज पर ब्याज न लगे।
(3) जीवनावश्यक वस्तुओं का दूर का व्यापार कम-से-कम हो।
(4) लोकविद्याधर समाज के उत्पादन और सेवा के मूल्य और सरकारी नौकरी के वेतन के बीच समानता हो।
(5) अनाज भण्डारण की व्यवस्था गाँव-गाँव में हो।
(6) स्थानीय मुद्रा, अन्न सम्प्रभुता, धरती माँ, प्रकृति के अधिकार जैसे विचारों और प्रयोगों में 'बाजार मोड़ो' अभियान के बीज हैं।

•

लोकविद्या पंचायत के पाठकों से

- **वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 50/-**
- **वेतन पाने वालों से कम से कम रु. 100/- प्रति वर्ष अपेक्षित है।**
- **आजीवन सदस्यता रु. 1000/-**
- **अपने क्षेत्र के लोकविद्याधरों की समस्यायें, संघर्ष एवं संगठनों के बारे में अवश्य लिख भेजें।**

सम्पर्क फोन

+91-9369124998, +91-9838944822

नई भाषाई चेतना

अपनी भाषाओं के प्रति एक नई चेतना का दौर फिर से शुरू हुआ है। विभिन्न भाषाई क्षेत्रों में फिर से भाषा को लेकर एक हलचल बनती जान पड़ती है। भोजपुरी क्षेत्र के लोग इस बात से अच्छी तरह परिचित है। कन्नड़ भाषा के एक जाने-माने विशेषज्ञ और साहित्यकार के0वी0 नारायणा ने भाषा और ज्ञान के सम्बन्ध में ऐसे सवाल उठाये हैं जो इस नई भाषाई चेतना को रेखांकित करते हैं। वे पूछते हैं कि क्या कन्नड़ एक ऐसी भाषा बन गई है जिसमें ज्ञान हमेशा ही बाहर से आता है। यानि क्या कन्नड़ भाषा अंग्रेजी न जानने वाले लोगों तक अंग्रेजी में निर्मित ज्ञान को पहुँचाने का एक माध्यम मात्र रह गयी है? क्या कन्नड़ में ही जिन्दगी जीने वाले किसी ऐसे ज्ञान का निर्माण नहीं करते जो बाहर की दुनिया को दिया जा सके? यह भाषा के प्रति एक नई चेतना का सूचक है क्योंकि यह भाषा का मनुष्य के बुनियादी रचनात्मक स्वभाव अथवा शक्ति यानि ज्ञान के साथ सम्बन्ध के प्रति एक राजनैतिक सरोकार के रूप में सामने आया है।

आजादी के आन्दोलन में भाषाई सरोकार ने एक बुनियादी भूमिका निभाई थी। गाँधी जी के कांग्रेस के नेतृत्व में आने के बाद कांग्रेस ने अपना एक नया संविधान बनाया था जिसमें संगठन का आधार भाषाई क्षेत्रीय समितियों में बनाया गया था। नतीजा भाषाई राज्यों के बनने और राज्यों द्वारा अपनी भाषाओं की तरक्की के लिये काम करने के रूप में हुआ। साथ ही इस दौर में इन भाषाओं का विस्तृत साहित्यिक विकास हुआ। लेकिन इन दोनों बातों के बावजूद कुछ लम्बी गुलामी के चलते और कुछ नई दुनिया में अमेरिका के उदय और दबदबे के चलते अंग्रेजी का दबदबा बहुत ज्यादा बना रहा। ज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी का वर्चस्व बना रहा। हालांकि तमाम विश्वविद्यालयों में भी क्षेत्रीय भाषाओं में पढ़ाना शुरू हो गया लेकिन बड़े विश्वविद्यालयों, शोध-संस्थानों तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों (इंजीनियरिंग, मेडिकल, साइंस, ला, मैनेजमेन्ट आदि) में अंग्रेजी ही चलती रही। वैश्विक ज्ञान को हम अंग्रेजी के मार्फत यहाँ लाते रहे और अनुवाद करके उस जनता के पास पहुँचाते रहे जो स्कूल कालेज तो पहुँच गई थी लेकिन अंग्रेजी नहीं जानती थी। और यह न भूलें की तीन चौथाई लोग तो अपनी भाषा में भी इस ज्ञान को पाने से दूर ही रह गये। कहा जा सकता है कि विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं ने आजादी के बाद के 50 सालों में एक सीमित ही क्यों न हो लेकिन अंग्रेजी में रचित और व्यक्त ज्ञान को अपने लोगों तक पहुँचाने की क्षमता का विकास किया। लेकिन सवाल यह है कि क्या यह काफी था, या यह कि क्या यह दिशा भाषाओं के लिये सही दिशा है? यही सवाल भाषा के प्रति नये सरोकार को समझने में मदद देंगे।

ज्ञान और भाषा के बीच अविच्छेद्य सम्बन्ध है। हमारे भाषाई विकास ने अभी तक हमें अपनी भाषा में ज्ञान के निर्माण के लायक नहीं बनाया है यह समझ सही है किन्तु सीमित है। यह समझ इस विचार से जुड़ी हुई है कि ज्ञान के क्षेत्र विश्वविद्यालय ही है और लिखित ज्ञान ही ज्ञान होता है। यह समझ खुद इसी आधुनिक दौर में बनी है जब यूरोपीय देशों ने पूरी दुनिया पर अपना अधिपत्य जमा लिया। इस दौर में बड़े पैमाने पर लोकविद्या का तिरस्कार हुआ इसलिये हालांकि यह समझ सही है कि हमारी क्षेत्रीय भाषायें ज्ञान लाने लायक तो बनी लेकिन ज्ञान के निर्माण का स्थान नहीं बन सकीं लेकिन यदि इन भाषाओं में ज्ञान के निर्माण की क्रिया को विश्वविद्यालयीय विद्या के परिप्रेक्ष्य में ही देखा जायेगा तो यह नया सरोकार जायज होने के बावजूद उद्धार का रास्ता शायद ही बना पाये।

भाषा, हमारी भाषा, हमारे लिये जीवनदान लेकर आये, एक ऐसा स्थान बने जहाँ से हम अपने ज्ञान की दुनिया और हाड़-माँस की दुनिया दोनों का निर्माण कर सकें इसके लिये यह जरुरी है कि हम ज्ञान निर्माण के उन स्थलों को पहचानें जो वैसे भी अंग्रेजी के दबदबे से दूर है। ये किसानों और कारीगरों की दुनिया है, महिलाओं की दुनिया है और आदिवासियों की दुनिया है। इतना ही नहीं बल्कि इसमें छोटा-छोटा रोजमर्रे का धंधा करने वाले तमाम समुदायों की दुनिया भी शामिल है। इस दुनिया में अपनी भाषा में सतत् ज्ञान का निर्माण होता है। इस ज्ञान को लोकविद्या कहते हैं। इस ज्ञान का निर्माण बिना किसी सरकारी सहायता के होता है, बिना वित्तीय निवेश के होता है और जोखिम की कोई भी जिम्मेदारी सार्वजनिक व्यवस्थायें नहीं उठातीं। भाषा के प्रति जिस नये सरोकार की चर्चा हमने शुरू में की है और जो एक नया उभरता हुआ सरोकार है उसे लोकविद्या व लोकविद्याधर समाज की क्षमताओं को पहचानना होगा। जिस असहज परिस्थिति ने इस सरोकार को जन्म दिया है उससे मुकबला किया जा सकेगा और भाषा एक बार फिर एक नये जागरण और परिवर्तन की वाहक बन सकेगी।

•

लोकविद्या का स्वामी मल्लाह समाज

पारमिता

परिचय : जल से जुड़कर अपनी जीविकोपार्जन करनेवाला मल्लाह समाज नदियों की प्रकृति की समझ तथा मौसम का ज्ञान रखता है। नाव चलाने, मछली मारने और गोताखोरी करने की कला का जानकार। मल्लाह समाज नदी किनारों की जमीनों तथा घाटों पर ही रहते हैं।

ऐतिहासिक स्थिति : मल्लाह समाज लम्बे समय से नदियों के किनारों पर रहते आये हैं। इन तटों पर इनकी प्रभुसत्ता स्थापित थी। मल्लाह नदियों के किनारों पर प्रहरी की भाँति निर्भीक होकर राज्य, नगर, कस्बा तथा गाँवों की रक्षा की जिम्मेदारी उठाते थे। आवागमन की आधुनिक सुविधाओं से पूर्व, व्यापार आदि हेतु आवागमन का मुख्य आधार-स्तम्भ मल्लाह समाज और उनकी नावें थीं। इनके बड़े-बड़े व्यापारिक जहाज दूर-दूर तक व्यापार के लिए जाते थे। लेकिन ब्रिटिश काल में तटों का सामरिक महत्व होने के कारण 'फेरी एक्ट' द्वारा तटों पर ब्रिटिश सरकार ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। जमींदारी व्यवस्था के कारण नदियों के किनारों की जमीनों पर भी उनका अधिकार हो गया।

सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति : मल्लाह समाज अधिकांशतः नदियों के किनारों पर ही रहते हैं। इनमें कई उपजातियाँ हैं, उन सभी के काम अलग-अलग बँटे हुए हैं। मल्लाह समाज की गाँव आधारित अपनी पंचायत होती है तथा पंच का सर्वोच्च व्यक्ति चौधरी होता है। सभी ग्राम चौधरियों को मिलाकर गाँवों की बड़ी बिरादरी पंचायत होती है, उसका सर्वोच्च व्यक्ति बड़ा चौधरी कहलाता है। जाति पंचायत के अतिरिक्त मल्लाहों के कई संगठन भी हैं। इन संगठनों के माध्यम से मल्लाहों ने अपने हितों की रक्षा एवं अधिकारों के लिए व्यापक संघर्ष किया है। मल्लाह समाज संघर्षशील समुदाय है, आज भी इनके संघर्ष कई स्थानों पर चल रहे हैं। बनारस के मल्लाह भी गंगा में मछली मारने के सवाल पर विशाल धरना और प्रदर्शन कर चुके हैं। राजनीति में भी मल्लाहों का प्रतिनिधित्व काफी पहले से रहा है किन्तु वर्तमान राजनीति एवं प्रशासन की संरचना ऐसी नहीं है कि उसमें जाकर अपने समाज के साथ जुड़ाव बनाये रखा जा सके या समाज के व्यापक लोगों के हितों की सुरक्षा की जा सके।

मल्लाह समाज के स्त्री-पुरुष, बच्चे सभी कार्य में लगे रहते हैं। जैसे—पुरुष और बच्चे मछली मारने का काम करते हैं तो स्त्रियाँ मछली बेचने का। आजकल प्रदूषण के कारण गंगा में मछलियाँ कम हो गयी हैं तथा मछली मारने पर जिला प्रशासन की तरफ से रोक भी है। इसलिए पुरुष अन्य प्रकार का काम करते हैं और महिलाएँ बाजार से थोक भाव में मछली खरीदकर उसे गली-मुहल्लों में जाकर बेचने का काम करती हैं।

जल पर जीवन-निर्वाह की निर्भरता धीरे-धीरे कम हो जाने से जाति पंचायत का अंकुश और संगठन की पकड़ समाज पर कमजोर हो गयी है। घाटों पर मल्लाह समाज का अधिकार न होकर जिला परिषद का अधिकार है। बालू खनन, अस्थायी पुल निर्माण, घाटों का ठेका जिला बोर्ड के अन्तर्गत ही इन्हें मिलता है। घाटों से सम्बन्धित योजनाओं को बनाने और क्रियान्वयन का कार्य जिला प्रशासन ही करता है।

मल्लाह समाज में उन लोगों की संख्या कम होती जा रही है जिनकी पूरी आर्थिक निर्भरता जल पर है। इस समाज के लोग बड़ी संख्या में खेती, बुनकारी, प्लास्टिक के सामान बनाना, बिन्दी तथा मजदूरी के कामों से जुड़ने के साथ-साथ नाव चलाने एवं मछली मारने का काम भी सीजन में करते हैं। पेशे में पर्याप्त आय न होने के कारण इस समाज के नौजवान अपने परम्परागत कार्य को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते। मल्लाह समाज के नौजवानों के बीच शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया तेज हुई है। सरकारी नौकरी न मिल पाने के कारण प्राइवेट कम्पनियों में एजेन्ट तथा प्राइवेट स्कूलों में पढ़ाने या अन्य प्रकार का काम कर रहे हैं।

मल्लाह समाज की विद्या : लम्बे समय से जल पर जीवन निर्भर होने के कारण नदियों की प्रकृति की समझ, घाटों की व्यवस्था एवं सुन्दरता का ज्ञान मल्लाह समाज के पास है। मछली मारने, गोताखोरी की कला द्वारा नदी से लाश निकालने, नाव चलाने आदि का ज्ञान रखते हैं। बाढ़ के समय मिट्टी का कटाव, नदी किनारों की जमीनों पर होनेवाली फसलों की समझ इस समाज के पास है। अस्थायी पुल निर्माण कार्य में इन्हें दक्षता प्राप्त है। घाट और नदी से जुड़े होने के कारण मौसम के भविष्यवक्ता हैं। आकाश को देखकर बारिश-तूफान, ओला-वृष्टि, प्राकृतिक क्रियाओं का अनुमान सहजता से लगा लेने की इनमें दक्षता है।

मल्लाह समाज की विद्या के सम्मान और अधिकार का सवाल : नदियों के किनारों पर मल्लाह समाज लम्बे समय से रहता आ रहा है लेकिन आज घाटों और नदी किनारों की जमीनों पर मल्लाहों का अधिकार नहीं है। जल से जुड़ी योजनाओं को बनाने और उनके संचालन पर पढ़े-लिखे प्रतिष्ठित एवं दबंग लोगों का नियन्त्रण होने के कारण मल्लाह समाज उपेक्षित है। जिनके पास घाटों की प्रकृति और सुन्दरता का ज्ञान नहीं है और न ही उसके साथ संवेदना, उन लोगों को घाटों को स्वच्छ और सुन्दर बनाने की जिम्मेदारी दी गयी है। घाटों के साथ जीवन-निर्वाह का रिश्ता और भावनाएँ जिन लोगों से जुड़ी थीं, उनके अधिकारों एवं हितों की वर्तमान व्यवस्था और आधुनिक विकास नीति के द्वारा लगातार अवहेलना की जा रही है। जल और मौसम से सम्बन्धित उनके ज्ञान को स्थानीय समाज के अतिरिक्त इस व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है। जबकि इन विषयों में शिक्षण संस्थानों से पठन-पाठन किये लोगों के ज्ञान को सम्पूर्ण समाज एवं व्यवस्था में सम्मान और सुविधा प्राप्त है।

नदियों की स्वच्छता का ध्यान रखना तथा घाटों की सुन्दरता की कुशलतापूर्वक निगरानी रखना, नदियों के किनारों पर रहनेवाले मल्लाह समाज के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता किन्तु ये योजनाएँ एवं व्यवस्थायें आज जिला प्रशासन के द्वारा संचालित की जा रही हैं।

मल्लाह समाज की यह माँग है कि जिस प्रकार जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन करके खेती करने वाले किसानों का जमीनों पर अधिकार

... शेष पृष्ठ 7 पर

लोकविद्या मंच : एक नई शुरूआत

वाराणसी में 10 अप्रैल 2011 को गंगा-वरूणा संगम पर आदि-केशव मंदिर व चन्दन शहीद मजार के बीच हुए 'विस्थापन रोको' सम्मेलन में लोकविद्या मंच बना था। विस्थापन रोको सम्मेलन में वाराणसी और चन्दौली के किसान, कारीगर और पटरी व्यवसाइयों के संगठनों के साथ लोकविद्या सामाजिक कार्यकर्ताओं ने भागीदारी की थी। सम्मेलन में जो मुख्य विचार उभर कर आया था वह यह कि किसान, कारीगर, आदिवासी और पटरी व्यवसाई अपनी विद्या यानि लोकविद्या के बल पर जीवन यापन करते हैं और यह कि विस्थापन उन्हें लोकविद्या के इस्तेमाल से वंचित करता है और रोजी रोटी की गंभीर समस्यायें पैदा करता है। इस बात पर सबकी सहमति रही कि विस्थापन से त्रस्त इन सभी समाजों को आपस में एकता स्थापित करनी होगी और इस एकता की कड़ी लोकविद्या ही है। इसीलिये लोकविद्या मंच का गठन किया गया। सम्मेलन में उपस्थित कुल 65 लोगों के बीच से 12 सदस्यों को चुनकर लोकविद्या मंच गठित हुआ।

लोकविद्या मंच की अब तक दो बैठके हो चुकी हैं। पहली बैठक वाराणसी में गंगा-वरूणा संगम पर शनिवार, 23 अप्रैल 2011को और दूसरी बैठक करसडा गांव में 21 मई 2011 को की गयी। करसडा में वाराणसी शहर के कूड़ा निस्तारण की परियोजना के तहत किसानों की जमीनों का अधिग्रहण किया जा रहा है।

लोकविद्या मंच की पहली बैठक की अध्यक्षता नारी हस्तकला उद्योग समिति की मंत्री प्रेमलता सिंह ने की।

विषय की स्थापना करते हुए दिलीप कुमार 'दिली' ने कहा कि किसान, कारीगर, छोटे दुकानदार, आदिवासी परिवार ही आज सरकारों की नीति के चलते अपने-अपने रोजगारों से विस्थापित हो रहे हैं। हमें अपनी विद्या अर्थात् लोकविद्या के बल पर जीवन यापन करने का अधिकार हासिल करना चाहिये और इसके लिये हमें संगठित होना पड़ेगा। लोकविद्या मंच का गठन इसी उद्देश्य से हुआ है। भारतीय किसान यूनियन वाराणसी के मण्डल अध्यक्ष श्री जगदीश सिंह यादव ने कहा कि किसान व कारीगर लोकविद्याधर है। अपनी विद्या के बल पर जीविका चलाने का इनका जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी को बचाये रखने के लिये लोकविद्या मंच का गठन हुआ है। बुनकर कल्याण संघर्ष समिति की ओर से एहसान अली ने कहा कि आज बाजार की मार से बुनकर पीड़ित है। पन्द्रह साल पहले एक दो करघे वाला बुनकर भी अपनी साड़ी बाजार में बेच लेता था, पर अब बाहर के व्यापारी गद्दीदार से माल मंगा लेते हैं, जिससे बुनकर बाजार से विस्थापित हो गया है। बुनकरों के हित के लिए स्थानीय बाजार व्यवस्था होनी चाहिए। करसड़ा गांव से आये बच्चेलाल ने कहा कि विकास प्राधिकरण कूड़ा डम्पिंग ग्राउण्ड बनाने के लिए जबरन किसानों की जमीन छीन रहा है। इसको रोकने के लिए हम गाँव वाले भारतीय किसान यूनियन के साथ लोकविद्या मंच की अगली बैठक को करसड़ा में करना चाहेगें। मंच ने इस बात पर सहमति व्यक्त की। पटरी के दुकानदारों के विस्थापन के विरोध में संघर्षशील बचाउलाल साहू ने लोकविद्या मंच के विस्तार की आवश्यकता पर जोर दिया तो नाई समाज के संजय शर्मा ने लोकविद्या मंच की बैठकों को लोकविद्याधर समाजों में अलग-अलग स्थानों पर करने का सुझाव रखा।सारनाथ के खजुही गाँव के छोटे किसान हीरालाल विश्वकर्मा ने कहा कि हमारी पारिवारिक जमीन के एक हिस्से की रजिस्ट्री पुलिस विभाग का एक आदमी अवैध रूप से करा लिया है। वह जबरन कब्जा करने की धमकी दिया करता है। लोकविद्या मंच ने इसे जनहित का पक्ष मानकर गाँव में पंचायत करने का निर्णय लिया। इन वक्ताओं के अलावा नन्दलाल, हीरालाल, बच्चालाल, फिरोज, शंकर, चौथी लाल विश्वकर्मा, श्रीराम सिंह, भरतलाल, फग्गू, गुरूनाथ, लोकविद्या मंच की इस सभा में सम्मिलित रहे।

अपने अध्यक्षीय भाषण में श्रीमती प्रेमलता सिंह ने कहा कि लोकविद्या जीवनयापन कानून बनना चाहिए जिससे कि लोकविद्याधर अपनी विद्या के बल पर जी सकें। लोकविद्या समाज की आबादी 80 प्रतिशत है, इसलिए समस्त ज्ञान विधाओं में और संसाधनों में लोकविद्या समाज के लिये 80 प्रतिशत स्थान आरक्षित होना चाहिये। इसके लिये एक नीति बनानी होगी और अन्य लोगों से सहयोग लेना होगा। सभा का संचालन करते हुए भारतीय किसान यूनियन के जिलाध्यक्ष लक्ष्मण प्रसाद मौर्य ने कहा कि लोकविद्या मंच विस्थापन के सवाल का हल करने वाला एक सक्षम मंच बनेगा।

सभा के अन्त में दिलीप कुमार 'दिली' को लोकविद्या मंच का संयोजक सर्वसम्मति से बनाया गया।

लोकविद्या मंच की दूसरी बैठक देवेन्द्र यादव की अध्यक्षता में करसड़ा गाँव में दिन शनिवार 21 मई को दोपहर 3.00 बजे हुई। इस बैठक में भारतीय किसान यूनियन वाराणसी, सथवां किसान संघर्ष समिति, करसडा किसान संघर्ष समिति, साझा संस्कृति मंच,लोकचेतना समिति, बुनकर कल्याण संघर्ष समिति,जरदोजी कारीगर शिवाला, नाई समाज दशाश्वमेध घाट, नारी हस्तकला उद्योग समिति के प्रतिनिधि व सामाजिक कार्यकर्ता शामिल हुए। कुल 85 लोगों की भागीदार में चली इस बैठक में भृगुनाथ पटेल ने करसडा गांव की स्थिति को विस्तार से रखा और किसी भी हालत में किसान जमीन देने को तैयार नही है इस बात को रखा। इसी गांव के बच्चुलाल ने कहा कि किसान अपना जमीर जिन्दा रखे और जमीन न दें। सथवां गांव से आई शामदेई ने सथवां किसान संघर्ष समिति द्वारा जमीन अधिग्रहण के विरोध में 30 दिनों से चल रहे किसान धरने की बात रखकर किसानों को अपनी जमीन बचाने के लिये संघर्ष करने के लिये ललकारा। सथवां में वाराणसी शहर के सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट के लिये किसानों की जमीन अधिग्रहित की जा रही हैं। जरदोजी के कारीगरों ने किसानों के विस्थापन को जरदोजी के कारीगरों के विस्थापन से जोड़कर रखा और लोकविद्या मंच लोकविद्याधर समाज के विस्थापन विरोध का सक्रिय मंच बने इस बात को पुख्ता किया। साझा संस्कृति मंच के नंदलाल ने गांव के अधिग्रहित जमीनों की वस्तुस्थिति को जानने की आवश्यकता को रखा और किसानों के नेतृत्व में संघर्ष बढ़ाने की बात रखी।

लोकविद्या मंच की अगली बैठक की पहल जरदोजी के कारीगरों ने ली। वे अपने क्षेत्र में इसे जून माह के तीसरे शनिवार को आयोजित करेंगे।

•

ठेला-गुमटी वालों पर एक और बड़ा हमला

भारत के फुटकर धंधे पर यूरोप व अमेरिका के बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठान एक नये हमले की तैयारी कर रहे हैं। यूरोपीय यूनियन और भारत के बीच सरकारी स्तर पर खुले व्यापार पर केन्द्रित वार्तायें चल रही है। इस वार्ता पर यूरोप के बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठानों और भारत की कुछ बड़ी कम्पनियों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। कारेफोर मेट्रो, टेस्को और भारती, जैसे दैत्य अपने यहाँ के कानून में ऐसा बदलाव चाहते हैं जिससे इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ऐसी खूब बड़ी - बड़ी दुकानें खोलने की छूट मिल जाये जहाँ वे कही भी बना हुआ कोई भी सामान बेच सकें। इस तरह का नया कानून बनाने का प्रस्ताव भी उद्योग मंत्रालय ने तैयार कर लिया है (बिजिनेस स्टैण्डर्ड मई 11, 2011)।

प्रस्ताव यह है कि बाहर से फुटकर धंधे में आने वाली कम्पनियाँ कम से कम रुपये 500 करोड़ का निवेश करेंगी। इनकी दुकानें 10 लाख से ज्यादा आबादी वाले शहरों में खोली जा सकेंगी। 2001 की जनगणना में ऐसे 36 शहर थे जो अब शायद 50 के ऊपर हों। भारत का फुटकर धंधा कुल 30,000 अरब रुपये का है। जिसमें 25,000 अरब रुपये का धंधा अंसगठित क्षेत्र में है। यानि कुल फुटकर धंधे का 85 फीसदी ठेला-गुमटी और छोटी दुकानों में होता है। बड़े पैमाने पर विदेशी कम्पनियों और अपने ही देश की बड़ी कम्पनियों को दी जा रही छूट से फुटकर धंधे में हाहाकार मच जायेगा। आज से 5 वर्ष पहले जब रिलायंस, टाटा, बिड़ला, आई टी सी, जैसे बड़े -बड़े निगमों ने फल और सब्जी के क्षेत्र में प्रवेश किया था तब सभी जगह जहां भी वे अपनी दुकानें खोलने गये थे, ठेला-गुमटी वालों ने विरोध में संघर्ष किया था। अब जब इन सब लोगों को हर तरह का सामान बेचने के लिये बड़ी बड़ी दुकानें बनाने की छूट मिल जायेगी तो पटरी-ठेला-गुमटी पर धंधा करने वाले तबाह हो जायेगें। शहरों के सुन्दरीकरण के नाम पर ठेला-गुमटी वालों का उजाड़ा जाना इन बड़ी कम्पनियों के स्वागत की तैयारी ही दिखती है।

इतना ही नहीं बल्कि फुटकर धंधे में विदेशी निवेश पर यह शर्त भी प्रस्तावित है कि उन्हें कुल निवेश का आधा ढाँचागत कार्यों पर खर्च करना होगा जैसे कोल्ड स्टोरेज, मिट्टी के परीक्षण की प्रयोगशालायें और बीज निर्माण की खेती आदि। इसे शर्त के रूप में प्रस्तुत करने का अर्थ है कि विदेशी कम्पनियाँ यह करने को उत्सुक नहीं होंगी क्योंकि वैश्वीकरण के बाद से इन कामों की तुलना में फुटकर धंधे में बहुत ज्यादा मुनाफा है। लेकिन इससे तो हमें और नुकसान होगा। कृषि के क्षेत्रों में व्यावसायिक कम्पनियों का दखल और कब्जा और बढ़ जायेगा। यह किसानों की आत्महत्याओं का रास्ता बनाता है। यानि बड़े धंधे वालों और पूँजीपति वर्गों के दोनों हाथों में लड्डू है। वे अपने मुनाफे के लिये करें या मजबूरी जता कर करें, दोनों ही स्थितियों में हम ही मारे जाते हैं। फुटकर धंधे वाले मारे जायेंगे और किसान मारे जायेंगे।

कुल मिलाकर भारत सरकार और दैत्याकार निगमों के बीच बड़ी ही घातक दोस्ती आकार ले रही है। निगम अपने तुरंत के फायदे देखते हैं और अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहते हैं। भारत सरकार उनकी इस इच्छा से सहानुभूति रखती है और ऐसी नीति बनाना चाहती है जो उनके दूरगामी पूंजीगत हितों की रक्षा करें, एक ऐसी व्यवस्था बने जिसमें व्यावसायिक वर्ग व अमीर लोग सुरक्षित रहें तथा साथ में तुरन्त के मुनाफे में भी कोई कमी न आये।

●

पृष्ठ 3 का शेष

लोकसत्ता के निर्माण के आधार स्थानीय बाजार

करता है। आज इस तंत्र के माध्यम से एक तरफ पूंजीपति वर्ग सस्ती दर पर कच्चे माल का उत्पादन अपने लिए प्राप्त करता है और दूसरी ओर ग्रामीण कारीगर को बेरोजगार बनाता है। खेती के यंत्र किसानों को देकर और किसानों के उत्पादन से उपयोगी वस्तुएं निर्मित कर ग्रामीण अथवा कस्बाई बाजार में बेचता है। इसके अलावा वह अपने उद्योगों के लिए किसानों से उनकी खेती की जमीन हड़पता है। इस प्रकार ग्राम पंचायत के मार्फत पूंजीपति वर्ग गांव के किसान की विद्या, कारीगरों की कारीगरी, कच्चे माल और बाजार तथा भूमि पर अपना आधिपत्य जमा कर मनचाहा शोषण करता है।

यही स्थिति नगरपालिका और प्रान्तीय सत्ताओं की भी है। नगर की व्यवस्था नगरपालिका नहीं करती बल्कि नगरपालिका पूंजीपतियों के नियंत्रण वाली दिल्ली की सत्ता का मनचाहा कार्य करने के लिए मात्र माध्यम बनती हैं। चुने गए प्रतिनिधि निरर्थक होते हैं। नगर की व्यवस्थाएं जैसे सड़क निर्माण, सफाई, पेयजल, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि उपलब्ध कराने में तो ये असफल हैं ही लेकिन नगर के उत्पादक समुदायों को निरंतर वंचित करते जाने में ये प्रभावी होती जा रही हैं। जैसा कि गुमटी, पटरी और ठेलों पर छोटी पूंजी का धंधा करने वालों को उजाड़ने में देश के नगरों की नगरपालिकाएं अत्यन्त निरंकुश हो गई हैं। अपने कार्यों को लोकप्रिय बनाने के लिए सत्ता तथाकथित कल्याणकारी योजनाओं (यातायात, सिंचाई, शिक्षा व चिकित्सा व्यवस्था) के माध्यम से स्थानीय जनता के असंतोष को उभरने नहीं देती एवं दूसरी ओर स्थानीय समाज की काबिलियत को तिरस्कृत भी करती है।

इसलिए यह भ्रम कतई नहीं पालना चाहिए कि वर्तमान पंचायतें या नगरपालिकाएं लोगों की स्थानीय सत्ता का प्रतिनिधित्व करती हैं। उल्टे आज की ये तथाकथित स्थानीय सत्ताएं लोगों को दिल्ली की सत्ता का गुलाम बनाने का ही कार्य कर रही हैं। और अब वैश्वीकरण के आक्रमण के चलते तो ये दिल्ली की सत्ता की स्थानीय इकाईयां बहुत शीघ्र ही साम्राज्यवादी शक्तियों की सेवा में लगी दिखाई देने लगी हैं। ऐसी स्थिति में लोक नियंत्रण वाली स्थानीय लोकसत्ता के निर्माण के आधार क्या हो सकते हैं इस पर विचार करना आवश्यक हो गया है।

लोकसत्ता निर्माण के प्रयास : समय-समय पर देश के विभिन्न भागों में लोकसत्ता के निर्माण में विभिन्न संगठनों द्वारा पहल ली गई, संघर्ष छेड़े गये और दिल्ली की लोकविरोधी सत्ता को चुनौती देने का प्रयास हुआ है। जैसे किसान आंदोलन, झारखण्ड आंदोलन, आदिवासी आंदोलन, वामपंथी विचारधारा वाले संगठनों के आंदोलन, चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन आदि तथा आंचलिक जन आंदोलन। इन सभी आंदोलनों ने विकास और सुरक्षा के मुद्दों पर जनहितकारी दृष्टिकोण को सम्मुख लाया और वैकल्पिक विकासनीति पर बहस खड़ी करने का प्रयास किया। इन आंदोलनों में दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता के प्रति तीव्र आक्रोश स्पष्ट उभरकर आता रहा है और विकेन्द्रित सत्ता की बात भी सामने आती रही है तथापि जाने क्या बात रही है कि संगठित विरोध करने का जब भी अवसर आता रहा है तब ऐसे विरोध को प्रदर्शित करने के लिए स्थान के रूप में दिल्ली को ही ज्यादा बार चुना जाता रहा है। शायद यह सोचकर कि सत्ता के केन्द्र पर आवाज उठाना अधिक प्रभावी होगा या दिल्ली (यानी केन्द्र) से उठी आवाज देशभर तक फैलेगी। *लेकिन आकाश के दीये से धरती का दीप नहीं जलाया जा सकता यह सभी लोग जानते हैं। अगर केन्द्रीय सत्ता के विरोध की रणनीति में भी दिल्ली के प्रति यह मोह होगा तो जन आंदोलन न तो दूरगामी होंगे और न लोकशक्ति को आकार और आधार देने वाले बन पायेंगे।*

इसलिए लोकशक्ति को दूरगामी संघर्ष के लिए आधार बनना है तो शोषणकारी केन्द्रीय सत्ता के विरोध को भी कण-कण में विकेन्द्रित करना होगा। व्यावहारिक रूप में 'स्थानीय समाजों' को अपने शोषण के खिलाफ एकजुट होना होगा। शोषण का विरोध जब स्थानीय समाजों द्वारा अपने ही स्थानों पर से होगा तो वह सही अर्थों में लोकशक्ति का आधार बनेगा। यह सही है कि इसके लिए नये विचार, नई कार्यपद्धति और नई रणनीति बनाने की आवश्यकता होगी। ''स्थानीय बाजार'' का विचार एक ऐसा ही विचार है जो ऐसी नई रणनीति और विचार का प्रभावी अंग बनकर स्थानीय सत्ता के निर्माण का आधार बनता है।

स्थानीय लोकसत्ताओं के एकजुट होने से व्यापक लोकसत्ता का निर्माण सम्भव हो सकता है। मजबूत आर्थिक पाये के बगैर स्थानीय लोकसत्ता बन नहीं सकती। स्थानीय बाजार ऐसे ही पाये बन सकते हैं। स्थानीय लोकसत्ता के निर्माण की एक कल्पना कम्युनिस्टों के कम्यून की है और एक गांधीजी के ग्राम स्वराज की है। अब समय बदल चुका है। गांवों या छोटे क्षेत्रों की व्यवस्थाएं पूरी तरह गांवों के बाहर से नियंत्रित हो रही हैं। स्थानीय लोकसत्ता के निर्माण के लिए हमें ऐसे केन्द्रों की आवश्यकता है जो अर्थव्यवस्था के जीवन्त हिस्से हों और जहां से समाज का हर व्यक्ति एक दूसरे से जुड़ा हो। ऐसे स्थान आज गांव, कस्बे और नगरों में फैले छोटे-छोटे बाजार ही हो सकते हैं। इन्हीं बाजारों पर स्थानीय लोगों का नियंत्रण हासिल कर स्थानीय लोकसत्ता के निर्माण का आंदोलन गति ले सकता है।

●

पृष्ठ 6 का शेष

लोकविद्या का स्वामी मल्लाह समाज

हो गया, उसी प्रकार मल्लाह समाज का प्रभुत्व घाटों पर और नदी किनारों की जमीनों पर स्थापित होना चाहिए।

जल की व्यवस्था और जल प्रदूषण से सम्बन्धित योजनाओं में मल्लाह समाज की भागीदारी से शायद जल की व्यवस्था और जल प्रदूषण के हल की सम्भावना स्थानीय स्तर पर निकल सकती है। न्यायसंगत व्यवस्था का निर्माण तभी हो सकता है जबकि समाज में रहनेवाले लोगों के पास जिस क्षेत्र का ज्ञान है जिसके बल पर वे अपनी स्थानीय समस्याओं को सुलझाने और आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता रखते हैं उस क्षेत्र से सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों में उन्हें स्थान व सम्मान दिया जाये।

स्थानीय समाज में व्याप्त ज्ञान को नकार कर अगर समस्याओं के समाधान का प्रयास किया गया तो निश्चित ही उसका लाभ विशेष वर्ग तक ही सीमित रह जायेगा। व्यापक समाज की समस्या का समाधान नहीं हो पायेगा। बल्कि विशेष वर्ग की समस्या का समाधान करने में बड़े पैमाने पर अन्याय का शिकार बहुसंख्य समाज को होना होगा। स्थानीय समाज की सहमति और भागीदारी के बगैर किसी भी प्रकार के विकास का कार्य न्यायपूर्ण प्रयास नहीं होगा।

●

पोस्को परियोजना को दी गई गैर-कानूनी अनुमति वापस ली जाये

भाड़े का मंत्रालय और आदतन झूठ बोलने वाला राज्य लोकतंत्र का गला नहीं घोंट सकते

2 मई, 2011 को पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने उड़ीसा की पोस्को परियोजना को 'अंतिम वन क्षेत्र अनुमति' देकर भारतीय लोकतंत्र पर एक सदमा पहुँचाने वाला हमला किया है। इससे यह साफ हो गया है कि सबको शामिल करने वाले लोकतंत्र की सारी बातें कितनी झूठी हैं। केन्द्र सरकार का यह आदेश उड़ीसा सरकार द्वारा कही गई सारी झूठी बातों पर आधारित है तथा तथ्यों, कानून के प्रावधानों व लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को पूरी तरह अनदेखा करता है। संप्रग सरकार ने इस देश के कानूनों को सबसे ऊंची बोली बोलने वाले के हाथ बेच दिया है।

साउथ कोरिया की कम्पनी पोस्को की यह इस्पात-बिजली-बंदरगाह की संयुक्त परियोजना आज तक का भारत में होने वाला सबसे बड़ा पूँजी निवेश है। उड़ीसा सरकार ने 2005 से ही अपनी ओर से 3133 एकड़ जमीन उन्हें आवंटित कर दी है। पर्यावरण और वन कानूनों के चलते केन्द्र सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय में यह प्रक्रिया रुकी हुई थी। इस मंत्रालय के मंत्री जयराम रमेश ने 2 मई को पोस्को को अंतिम हरी झंडी दिखा दी।

नीचे दिये गये तथ्य विशेष रूप से ध्यान देने लायक हैः-

1) पोस्को को दी गई जमीन सरकार की नहीं है। यह ढिकिया और गोविन्दपुर गाँवों के अन्तर्गत आने वाली वन भूमि है। दोनों गाँवों की पल्ली सभाओं ने 21 और 23 फरवरी 2011 को अपनी-अपनी पल्ली सभाओं में पोस्को को उनकी वन भूमि दिये जाने का विरोध किया। इस विरोध से उड़ीसा सरकार को अवगत भी कराया गया, लेकिन उड़ीसा सरकार ने उनकी इस प्रक्रिया को खारिज करके केन्द्र सरकार से पोस्को के पक्ष में पैरवी की। वन भूमि आवंटन के लिये कानूनी तौर पर जरूरी किसी भी प्रावधान अथवा प्रक्रिया का पालन उड़ीसा सरकार ने नहीं किया। इस तरह उड़ीसा सरकार पर डकैती का आपराधिक मामला बनता है और केन्द्र सरकार का पर्यावरण व वन मंत्रालय अपने 2 मई, 2011 के आदेश के चलते इस अपराध का साझीदार बनता है।

2) उड़ीसा सरकार और केन्द्रीय पर्यावरण-वन मंत्रालय ने लगातार झूठ बोला है। उड़ीसा सरकार कहती है कि यह जमीन वन भूमि नहीं है जबकि उनके खुद के नक्शे दूसरी ही कहानी कहते हैं। दोनों ही सरकारें कहती हैं कि ढिकिया और गोविन्दपुर की पल्ली सभाओं में बहुत कम लोग उपस्थित थे, केवल 60, जबकि वास्तविकता यह है कि 2000 लोगों (कुल संख्या का 70 फीसदी) के दस्तखत के साथ पल्ली सभाओं के फैसले उड़ीसा सरकार को रजिस्ट्री से भेजे गये थे। उड़ीसा सरकार ने 34 दस्तखतों का एक झूठ का पुलिन्दा केन्द्रीय मंत्रालय को दिया तथा उन्होंने आपसी सहयोग और संघीय ढ़ाँचे का हवाला देते हुये आदेश पारित कर दिया।

3) पोस्को के पर्यावरणीय प्रभावों के अध्ययन के लिये पर्यावरण-वन मंत्रालय ने एक जाँच समिति गठित की थी। उस जाँच समिति ने अत्यधिक गंभीर पर्यावरणीय प्रभावों की संभावना व्यक्त करते हुए कहा कि उनका ठीक से अध्ययन नहीं किया गया है, पहले से उनके लिये तैयारी करना तो दूर। प्रशासन अपना काम न करके सशर्त अनुमति का रास्ता निकालता है और कठिन निर्णयों से बचता रहता है। लेकिन मंत्रालय ने अपनी ही समिति की रिपोर्ट को धता बताकर पोस्को को अनुमति दे दी।

4) स्वतंत्र अध्ययन यह बताते हैं कि कुल मिलाकर इस परियोजना के चलते रोजगार के मौके घटेंगे। परियोजना ने बहुत झूठ बोला है तथा इस महापरियोजना के चलते भारतीय अर्थ व्यवस्था को नुकसान है। वैसे देखा जाये तो आज की तारीख में पोस्को और सरकार के बीच कोई भी समझौता लागू नहीं है। पिछला समझौता जून 2010 में खत्म हो गया। तो आज किस आधार पर पोस्को के लिये जमीनें अधिग्रहित करने की अनुमति दी जा रही है? हम किस दुनिया में रह रहे हैं?

5) जयराम रमेश से पहले 2004-2007 के बीच ए. राजा पर्यावरण एवं वन मंत्री थे। उनके कार्यकाल में मंत्रालय ने 19 जुलाई 2007 को पोस्को को पर्यावरण स्वीकृति प्रदान की थी जो अगस्त 2010 में विशेषज्ञों की आपत्ति के चलते खारिज कर दी गई। अब चूँकि ए. राजा के कार्यकाल के दौरान दी गई पर्यावरण स्वीकृतियाँ भी सी.बी.आई. की जाँच के दायरे में आ गई हैं, इसलिये मामला और न फँस जाये, इस डर से जयराम रमेश ने आनन-फानन में सारी आपत्तियों को दर किनार करते हुए पोस्को को आगे बढ़ने का रास्ता साफ कर दिया।

पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति ने हाल ही में जनवरी 2011 में चेतावनी दी थी कि पोस्को परियोजना का भविष्य भाड़े की सरकारें नहीं तय करेंगी बल्कि लोगों के आंसुओं और खून से यह तय होगा।

हमारी माँग

1) पोस्को परियोजना को दी गई अनुमति तुरंत वापस ली जाये।

2) उड़ीसा सरकार और पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा की गई धोखाधड़ी पर एक उच्च स्तरीय जांच बैठाई जाये तथा इस अपराध में लिप्त लोगों को कड़ी सजा मिले जिससे लोगों का लोकतंत्र में विश्वास वापस स्थापित हो।

3) स्वतंत्र पर्यवेक्षकों की उपस्थिति में पारदर्शी व न्याय संगत तरीके अपनाकर प्रस्तावित परियोजना क्षेत्र के संघर्षरत लोगों का मत हासिल किया जाय।

(यह नोट निम्नलिखित के प्रेस वक्तव्य के आधार पर बनाया गया है— सम्पादक)

पोस्को प्रतिरोध एकता, NFF PFW, CSD, NAPM, INSAF.

●

संवाद

अहमद युसुफ

बूढ़े कथावाचक ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा, ''हां, तो जैसा कि मैंने अभी कहा, वह झरना हंसता-खेलता, प्रसन्नता के गीत गाता आगे की ओर बढ़ रहा था। जंगल के सभी वासी और उसके किनारे बसी आबादी झरने का पानी पीकर ताजा दम हो जाया करती। जहां से वह झरना निकला था, वहां से कुछ दूर आगे जाकर नीचे धरातल पर बहा करता। एक दिन की घटना है।''

इस भूमिका के बाद जब कथावाचक ने यह वाक्य कहा तो सुनने वाले और सिमट आए कि जैसे दरिया मैदानों में उतर आया है और बात आगे बढ़ेगी।

''तो हुआ यह कि उस दिन ऊपर की ओर एक शेर झरने का पानी पी रहा था। जब वह जी भर कर पानी पी चुका तो उसने आस-पास के माहौल और दूर तक फैले हुए वातावरण को अपनी आंखों में बसाया। इस बीच उसने अपनी गर्दन को इधर-उधर, आगे -पीछे घुमाया। कई बार आंखों को मींचा और खोला, और तभी एक दृश्य उसकी आंखों को एक नई चमक दे गया।

जहां वह शेर खड़ा था उससे कुछ ही दूर ढलान की ओर एक मेमना झरने का पानी पी रहा था।

झरने का जीवन दायक पानी, दूर-दूर तक फैला हुआ मनोरम दृश्य और उस पर मेमने के रूप में एक स्वादिष्ट उपहार।

दूसरे ही क्षण शेर के हृदय में एक विचार आया। वह अपनी प्रजा से बातचीत के रीति रिवाज से अच्छी तरह परिचित था। जो कार्य उसके लिए उचित हो सकता है वह उसके प्रजाजनों के लिए अनुचित हो सकता है। और जो उनके लिए उचित हो सकता है वह शेर के लिए अनुचित हो सकता है। राज-पाट के कुछ नियम थे जो उसकी रगों में रच-बस गए थे।

तभी शेर ने गरजते हुए कहा, 'अबे छोकरे! तेरी यह धृष्टता कि इस पानी को जूठा करे जिसे मैं पीता हूं? तूने यह नहीं देखा कि तुझसे कुछ ही दूरी पर मैं भी इस झरने का पानी पी रहा था।'

मेमना कांप उठा और उसने बड़ी कठिनाई से स्वयं को संभाल कर कहा, 'महाराज! आप ऊपर हैं और मैं नीचे हूं, झरने का सारा बहाव ऊपर से नीचे की ओर है, ऐसे में भला मैं आपका पानी किस प्रकार जूठा कर सकता हूं?

सुनने वालों में से किसी ने कहा, ''शेर और मेमने के तर्क का अंतर स्पष्ट है।''

इस पर कथावाचक ने बुरा मान जाने वाले स्वर में उनसे कहा कि वह किस्से के बीच में किसी प्रकार का विचार व्यक्त करने से बचें वरना वह किस्सा भूल जायेगा।

हां, तो फिर शेर की आंखें लाल हो गईं। उसका चेहरा कुछ और बड़ा हो गया और उसका कद कुछ और खिंच गया। और जब वह जोर से दहाड़ा तो सारा वातावरण थर्रा उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण यह आभास हुआ कि वातावरण ने अपनी सांस रोक ली हो। यही स्थिति मेमने की भी थी।

शेर ने कहा, ''ठहर, तुझे तेरी धृष्टता का फल चखाता हूं। तुझे यह भी नहीं पता कि मुझसे इस वन के पंछी, पखेरू, छोटे-बड़े पशु और पेड़-पौधे किस प्रकार बात करते हैं।''

यह कह कर शेर ने तराई की दिशा की ओर मुंह किया। मेमने का इतना साहस कहां कि वह भागने की सोचे! पहले ही शेर के आगे बड़ी धृष्टता कर चुका था।

मेमने की शरीर का सारा लहू उसके दिल में खिंच आया था और वह बड़े ही भोलेपन और दीनभाव से शेर की ओर देख रहा था। किंतु तुमने वह कहावत सुनी होगी कि घोड़ा यदि घास से मित्रता करे तो फिर खाए क्या?

इस प्रकार शेर ने मेमने को चीर -फाड़ कर बराबर कर दिया।

सुनने वालों में से एक युवक खड़ा हुआ और उसने खंखारते हुए कहा, ''आदरणीय बाबा! यह किस्सा इसी जगह समाप्त नहीं होता, इससे भी आगे जाता है।''

कथावाचक झल्ला उठा, ''बकते हो, यही उसका अंत है।''

तब श्रोताओं के अनुरोध पर युवक ने उसके आगे का किस्सा सुनाया- शेर मेमने को ठिकाने लगा कर अपनी जगह वापस आया तो उसने झरने पर मुंह साफ किया और खूब जी भर कर पानी पिया। जब यह सब कर चुका तो अपने स्वभाव के अनुसार उसने अपने आस-पास का निरीक्षण किया और तराई की ओर दृष्टि दौड़ाई।

तराई की ओर फिर वही मेमना उसी स्थान पर खड़ा पानी पी रहा था।

शेर क्रोध से पागल होकर गरजा, ''तू फिर आ गया झरने के पानी को जूठा करने, तेरा यह साहस!

मेमने ने वही उत्तर दिया जो इससे पहले दे चुका था, ''जहांपनाह! पानी ऊंचाई से ढलान की ओर आता है, ढलान से ऊंचाई की ओर नहीं जाता।''

और इस बार भी शेर उसी प्रकार तराई में आया और उसने मेमने की बोटी नोच डाली।

तीसरी बार भी यही हुआ।

चौथी बार भी यही हुआ।

तब बार-बार की इस क्रिया से वातावरण ने इस पूरे संवाद को अपने सीने में सुरक्षित कर लिया।

और जब वह मेमना सामने आता तो वातावरण स्वयं बोल उठता, ''धृष्ट छोकरे! तेरा यह साहस कि मेरे पीने के पानी को जूठा करे!''

फिर वही वातावरण मेमने का भी उत्तर देता, ''जहांपनाह! पानी ऊंचाई से ढलान की ओर आता है, ढलान से ऊंचाई की ओर नहीं जाता।''

इस संवाद के बाद शेर अपने विशेष ढंग से तराई की ओर आता और मेमने को चीर-फाड़ कर ठिकाने लगा देता। पर इस भाग दौड़ से शेर बहुत निढाल सा हो गया था।

उसकी आंखों के आगे तितलियां सी नाच रही थीं। मुंह पर मक्खियां भनक रही थीं। और वह सोच रहा था कि अब से पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था।

तब कथावाचक ने प्रश्न किया, ''मेरे प्यारो! यह बताओ कि फिर यह किस्सा समाप्त कहां होता है?''

–उर्दू की नई कहानियां, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया से साभार

फलीस्तीनी कविता

एक दिवालिये की रिपोर्ट

समीह अल-कासिम

अगर मुझे अपनी रोटी छोड़नी पड़े
अगर मुझे अपनी कमीज और अपना बिछौना बेचना पड़े
अगर मुझे पत्थर तोड़ने का काम करना पड़े
या कुली का
या मेहतर का
अगर मुझे तुम्हारा गोदाम साफ करना पड़े
या गोबर से खाना ढूंढना पड़े
या भूखे रहना पड़े
और खामोश
इंसानियत के दुश्मन
मैं समझौता नहीं करूँगा
आखिर तक मैं लडूँगा।

जाओ मेरी जमीन का
आखिरी टुकड़ा भी चुरा लो
जेल की कोठरी में
मेरी जवानी झोंक दो
मेरी विरासत लूट लो
मेरी किताबें जला दो
मेरी थाली में अपने कुत्तों को खिलाओ
जाओ मेरे गांव की छतों पर
अपने आतंक के जाल फैला दो
इंसानियत के दुश्मन
मैं समझौता नहीं करूंगा
और आखिर तक मैं लडूंगा।

अगर तुम मेरी आँखों में
सारी मोमबत्तियाँ पिघला दो
अगर तुम मेरे होंठों के
हर बोसे को जमा दो
अगर तुम मेरे माहौल को
गालियों से भर दो
या मेरे दुखों को दबा दो
मेरे साथ जालसाजी करो
मेरे बच्चों के चेहरे से हंसी उड़ा दो
और मेरी आँखों में अपमान की पीड़ा भर दो
इंसानियत के दुश्मन
मैं समझौता नहीं करूंगा
और आखिर तक मैं लडूंगा।

मैं लडूंगा
इंसानियत के दुश्मन
बंदरगाहों पर सिगनल उठा दिये गये हैं
वातावरण में संकेत ही संकेत हैं
मैं उन्हें हर जगह देख रहा हूं
क्षितिज पर नौकाओं के पाल नजर आ रहे हैं
वे आ रहे हैं
विरोध करते हुए
यूलिसिस की नौकाएं लौट रही हैं
खोये हुए लोगों के समुद्र से
सूर्योदय हो रहा है
आदमी आगे बढ़ रहा है
और इसके लिए
मैं कसम खाता हूं
मैं समझौता नहीं करूंगा
और आखिर तक मैं लडूंगा।
मैं लडूंगा

– इंतिफादा : फलस्तीनी कविताएं, संकलन व अनुवाद रामकृष्ण पाण्डेय, परिकल्पना प्रकाशन से साभार।

अनगढ़-मनगढ़

क्या-क्या बनना चाहा था... बेईमान बन गया हूँ ऽऽ

अनगढ़ अपनी मण्डली में बैठे मस्ती में गा रहे हैं—

''क्या... क्या बनना चाहाऽऽ थाऽऽ.... बेईमान बन गया हूँ...ऽऽ''

'बेईमान' गाते समय अनगढ़ न जाने कैसी सूरत बनाते हैं...ऽऽ कि सब हँस पड़ते हैं। अनगढ़ का गाना जारी है... ''जाना तुम्हारे प्यार में ऽऽ.. शैतान बन गया हूँऽऽ...''

''अबे ठीक से ना गा सकते? और इस उमर में किसके इश्क में मरे जा रहे हो...?'' गबरू कोहनी से ठेलते हुये पूछते हैं।

''हम्मे मुकेशवा का गाना बड़ा नीक लगेला। हमरे जमाने क गाना हव।

ई गाना त खास हव काहे के ई पर्दे पे महमूदवा गावत हव।''

थोड़ा रुककर अनगढ़ बोले ''ई गाना हमें पसंद हव काहे के ई पोलिटिकल गाना हव।''

चुंडीधारी ने अनगढ़ की ओर ऐसे देखा जैसे अनगढ़ के कहीं भांग त नाही चढ़ल हव?

''अनगढ़ तू ज्यादती करत हौवा। ई गाना त प्रेमी प्रेमिका के लिये गावत हव। तू त हर चीज में सामाजिकता भिड़ा देवला।'' मनगढ़

''हमहूं त प्रेमिका के लिये ही न गावत हईं'' मुस्कियाते हुए अनगढ़ बोले ''सारा जहाँ लोकतंत्र का दीवाना है। लोकतंत्र के इश्क में हम भी गा रहे हैं'' और फिर अनगढ़ दिल पर हाथ रखकर अगली पंक्तियाँ गाने लगे—

''हम तो दीवाने हैं तेरे नाम के...ऽ

दिल लुटा बैठे हैं जिगर थाम के... ''

''अरे सोचो तनिक, अमेरिका इराक पर बम गिराये, अफगानिस्तान को रौंद दे और कहे कि यह लोकतंत्र की रक्षा के लिये है। पाकिस्तान में घुसकर ओसामा का एनकाउंटर कर दे तो भी लोकतंत्र की रक्षा होती है। हम भी उसके सुर में सुर मिलाकर इस जैसे लोकतंत्र के प्यार में पागल हुए जा रहे हैं, उसका नाम जपते हैं। हम तो ये गायेंगे कि ''दिल ही नहीं दिमाग भी लुटा बैठे हैं जिगर थाम के...ऽऽ''—अनगढ़ चढ़ी आवाज में गाने लगे।

''बात त सही है कि लोकतंत्र में हम क्या-क्या बनने का सपना देख रहे थे और शैतान बन गये हैं। हमें छत्तीसगढ़ के आदिवासियों को गाँवों से पुलिस की मदद से खदेड़ने में कोई कष्ट नहीं होता। आदिवासियों की जिन्दगी तबाह होते हुए भी हम विकास का ही असुंदर गीत गाने में मदहोश हैं। यही शैतान बन जाने के लक्षण हैं।'' मनगढ़ बोले।

''किसानों की जमीन छीनने में और इनके विरोध करने पर उनपर गोली चलाने में कोई दर्द नहीं है। लोकतंत्र का गान निर्बाध चलता है।'' हरिया तड़प कर बोले।

''खुद एक से एक बड़े घोटाले में फँसे हैं..... खूब पैसा खायेंगे..... चाहे कलेक्टर हो, चाहे मंत्री, चाहे जज, चाहे प्रोफेसर..... लेकिन लोकतंत्र का प्रेम अटूट और अमर रहेगा।'' खोमचे वाला बोला।

''जहाँ लोकतंत्र नहीं है उन्हें ऐसी हिकारत से देखेंगे जैसे कैसे जाहिल हैं और लोकतंत्र में रहने वाले खुद सामाजिक और नैतिक जिन्दगी में हैवान हों तो भी सम्माननीय बने रहेंगे'', दद्दू बोले।

अनगढ़ आगे गाने लगे,

''इतना मैं गिर चुका हूँ... कि हैवान बन गया हूँ...

क्या-क्या बनना चाहा था... बेईमान बन गया हूँ''

मनगढ़ कुछ उदास हो गये बोले ''लोकतंत्र में लोगों पर इतनी मार पड़ रही है लेकिन कहीं कोई बड़ी हलचल और आवाज नहीं उठती है। जो उठाते हैं उन्हें आतंकवादी या नक्सलवादी करार देते हैं, ये भी कोई लोकतंत्र है?''

अनगढ़ आगे गाते हैं—

''अब तो बस पत्थर की इक तसवीर हूँ

या समझ लो इक बुते बेपीर हूँ...''

अगली पंक्ति गबरू बड़े सुर में उठा लेते हैं—

''अपने पैरों बंध गई जो प्यार से ऐसी उलझीऽऽ हुई जंजीर हूँऽऽ''

सभी मिलकर जोर से गाने लगे—

''इश्क ने हमको निकम्मा कर दियाऽऽ

वरना हम भी आदमी थे काम केऽऽ''

—कस्तूरी

बुक पोस्ट

लोकविद्या पंचायत, मासिक समाचार पत्र, विद्या आश्रम (सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007) की ओर से **डा.चित्रा सहस्रबुद्धे** द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित।
website : vidyaashram.org **Blog :** lokavidyapanchayat.blogspot.com , lokavidyajanandolan.blogspot.com **e-mail :** vidyaashram@gmail.com **Phone :** +91-9838944822
प्रेस : **सत्तनाम प्रिण्टर्स**, एस-1/208 के-1, नई बस्ती, पाण्डेयपुर, सारनाथ रोड, वाराणसी-221002